ब्रह्मचर्य
विवाह
के
पहले
और
विवाह के बाद
1765
जन स्वास्थ्य प्रकाशन

ब्रह्मचर्य विवाह के पहले

और

विवाह के बाद

लेखक

डा० हीरालाल एन० डी०

जल चिकित्सा, आहार और स्वास्थ्य, उपवास और स्वस्थ्य-अपक्वाहार द्वारा स्वास्थ्य, स्वस्थ आहार और रोगोंकी चिकित्सा, वैज्ञानिक प्राकृतिक चिकित्सा, मातृकला और शिशुपालन, डा० विटामिन एवं सूर्य किरण चिकित्सा आदि अनेक पुस्तकोंके रचयिता ।

भूमिका लेखक

पू० विनोबा जीके अनुज श्री बालकोवा भावे

संस्थापक अध्यक्ष

अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा, परिषद्

दो शब्द

समाजकी वर्तमान अवस्थापर दृष्टि डालनेपर ऐसा प्रतीत होता है कि आजका नवयुवक कुछ भ्रान्त सा हो रहा है। वह एक ऐसे चौराहेपर खड़ा है, जहांसे वह अपने गम्य स्थानकी ओर बढ़ना तो चाहता है परन्तु भ्रममें पड़ा है कि किस मार्गसे चले।

प्रत्येक युवक-युवती विवाहकी मधुर लालसाको संजोता है। अपने वैवाहिक जीवनको वह अधिकसे अधिक सुखकर देखना चाहता है परन्तु जीवन साथीके चुनावमें और अपनेको उसके अनुकूल बनानेके प्रयासमें उसे क्या सावधानी बरतनी चाहिये। यह वह नहीं जान पाता।

ऐसे ही युवक-युवतीको लक्ष्य करके प्रस्तुत पुस्तक लिखनेकी चेष्टा की गई है। इस विषयकी अन्य पुस्तकें भी बाजारमें हैं। मुझे उनकी उपयोगिता, प्रभाविकता आदिपर कुछ नहीं कहना है परन्तु अपनी ओरसे मैं इस पुस्तकके संबंधमें केवल यह निवेदन करना आवश्यक समझता हूँ कि इसमें सदाचार एवं स्वास्थ्य सुधार आदिके विचारसे विषयका विवेचन करने की चेष्टा की गई है और यह प्रयत्न किया गया है कि इसके पापक युवक और युवती यह जानें कि विवाहके पूर्व और विवाहके पश्चात् अपने जीवनमें किन नियमों और आचरणोंको बरतें जिससे उनका जीवन सुखकर और सफल बने। यदि यह पुस्तक हमारी युवा-पीढ़ीके जीवन सुधारमें कुछ भी सहायक हुई तो हमें प्रसन्नता होगी।

निवेदक:—

१५–३–८३ हीरालाल

भूमिका

इस ग्रन्थका नाम है "ब्रह्मचर्य विवाहके पहिले और विवाहके बाद" इसके लेखक श्री डा० हीरालाल जी प्राकृतिक चिकित्साके बड़े अनुभवी हैं। कानपुरके पास मगरवारामें काफी सालसे प्राकृतिक चिकित्साका एक केन्द्र चला रहे हैं। वे लेखक भी हैं। कई सालसे खुद वानप्रस्थी होनेके कारण इस पुस्तकके विषयपर लिखनेका उनका अधिकार माना जायगा। जिन्होंने ब्रह्मचर्यका अनुभव न लिया हो, जो निर्विकारिताको न पहुँचे हों वे इस विषयपर लिख नहीं सकेंगे यानी लिखनेके अधिकारी वे माने नहीं जायेंगे। पवित्र पुरुष ही इस विषय पर कुछ लिख सकते हैं।

ब्रह्मचर्य पालनका शरीर स्वास्थ्यके साथ बहुत संबंध है। प्राचीन कालमें चार आश्रमकी सुव्यवस्था थी। आज वह व्यवस्था नहीं रही। चारों आश्रमकी खूबी यह थी कि ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और सन्यासमें अस्खलित ब्रह्मचर्य पालन ही रक्खा गया और ईश्वरका सृष्टिचक्र चालू रखनेके लिये बीचमें थोड़े कालका गृहस्थाश्रम रख दिया, उसमें के प्रजोत्पत्ति की दृष्टिसे स्त्री संगको मान्यता दी गई। गृहस्थाश्रम भी एक आश्रम होनेके कारण उसमें भी कामवासना बढ़ने न पावे और वासना अपने काबूमें रहे इस दृष्टिसे नियम पालनपर काफी जोर दिया गया। 'ऋतौ भार्यामुपेयात्' यानी ऋतुकालमें स्वस्त्रीके साथ संबंध रख सकते हैं। मगर गर्भाधानके बाद जबकि ऋतुस्राव बंद हो जाता है तब स्त्री संग वर्ज्य माना गया। मगर आजकलके सिनेमा आदि गंदे वातावरणमें वह सुवर्ण नियम टूटा, इसके दुष्परिणाम स्त्री जातिको भुगतने पड़ते हैं, उसका वर्णन लेखकने इस पुस्तकमें किया है और उसपर उपाय भी बताये हैं।

ब्रह्मचर्याश्रममें यानी आजकलके विद्यार्थी दशामें आजकलके गंदे

वातावरणसे ब्रह्मचर्य पालन कठिन हो गया है । हस्तमैथुन उसके बाद स्वप्नावस्था इन दो का अनुभव लेते हुए ब्रह्मचर्याश्रम व्यतीत होता है । इन दो का शरीर स्वास्थ्य पर बुरा परिणाम होता रहा है मगर मन भी दुर्बल हो जाता है और कामवासनापर नियंत्रण रखनेमें आजकलका विद्यार्थी अपनेको असमर्थ पाता है । इसके फलस्वरूप शरीरमें कुछ रोग दाखिल हो जाते हैं । इन रोगोंका वर्णन भी पाठकगण इस पुस्तकमें पायेंगे ।

ब्रह्मचर्य पालनका खान पानके साथ गाढ़ा संबंध रहता है । चटकीली, गरम, मसालेयुक्त उत्तेजित चीजें खानेका रवैया आजकल बहुत बढ़ जानेसे ब्रह्मचर्य जीवन और गार्हस्थ जीवनमें ब्रह्मचर्य पालन करीबन असंभव सा हो गया है । इसका हूबहू वर्णन इस पुस्तकमें पा सकेंगे । ब्रह्मचर्यके साधारण नियमके प्रकरणमें ब्रह्मचर्य पालन आसान हो जाय, इसके लिए काफी नियम बताये हुये हैं । पाठकगण उसे गौरसे पढ़ें ।

इस पुस्तकमें स्व० किशोरलाल भाई और महात्मा गाँधीके ग्रंथोंमें से काफी उद्धरण दिये हुए हैं । इसलिये इस पुस्तककी मौलिकता बढ़ गई है ।

अपने नजरके सामने किसी उच्चकोटिके सत्पुरुषका उदाहरण हमेशा रखने से ब्रह्मचर्य पालनमें उस सत्पुरुषसे प्रेरणा अवश्य मिलती रहेगी । ब्रह्मचर्यकालमें आजकलके संत आचार्य विनोबा भावेका उदाहरण अपने सामने रखनेसे लाभ होगा । विनोबा छोटेपनसे बाल ब्रह्मचारी रहे हैं । सिनेमा उन्होंने कभी देखा नहीं । सद्ग्रंथोंका वाचन, मनन, चिंतन नित्यकी चीज थी । बहनोंके सहवासमें छोटेपनमें वे कभी रहे नहीं । बहनोंके प्रति उनका मातृभाव या सगी बहनका भाव रहता था । खान-पान में अत्यन्त संयमी जीवन था । भोजनमें चीज स्वादिष्ट बनी है या नहीं इसके तरफ उनका ध्यान कभी गया नहीं । भोजन करते समय 'यदृच्छा लाभ संतुष्ट' यह उनकी वृत्ति रही । नित्य ८-१० मील घूमनेसे दिन भर का व्यायाम उनको हो जाता था । स्नान हमेशा ठंडे जल से करते थे । सोनेमें

गद्दीका उपयोग कभी उन्होंने किया नहीं । पांवमें चप्पल उन्होंने कभी पहना नहीं ।

गांधी जीका गृहस्थी, ब्रह्मचर्य एवं वानप्रस्थ जीवन गृहस्थी लोगोंके लिये आदर्श रहेगा । गांधी जीकी शादी छोटेपनमें होनेसे विकारोंपर काबू मिलनेमें उनको कठिनाई महसूस हुई । फिर भी सार्वजनिक सेवाका ध्येय अपने सामने रहनेसे ३१ सालकी उमरमें ही उन्होंने स्वस्त्रीके साथ ब्रह्मचर्य पालन शुरू कर दिया । छः सालके अखण्ड प्रयत्नके बाद उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया और उसे अंततक निभाया । ब्रह्मचर्य पालनके कारण उनका शरीर स्वास्थ्य हमेशा अच्छा ही रहा । लगातार अतंद्रित होकर काम करने की शक्ति उनकी अद्भुत थी । वह भी ब्रह्मचर्य पालनके कारण रही थी ।

जब उन्होंने ब्रह्मचर्यका पालन शुरू किया तब कस्तूरबाके साथ उन्होंने मातृभावका अभ्यास शुरू किया ।

औरोंकी तरह कस्तूरबाको वे 'बा' कहकर ही पुकारते थे । मातृ–भावनाके अभ्यासमें वे सफल रहे । सोनेका कस्तूरबाके साथ एक पथारीमें न रखकर अलग रखते थे । रात्रीका भोजन हलका कर दिया, सोनेके समय पासमें भगवद्गीता रखते थे और मालाका जप करके सोते थे । सद्ग्रंथोंका चिंतन, मनन जारी था और सारा दिन लोकोपयोगी सत्कर्म-में ही बीतता था । इन सब साधनासे वे गृहस्थी होते हुए भी गृहस्थी ब्रह्म–चर्य एवं वानप्रस्थ जीवनको सिद्ध कर सके । शरीर स्वास्थ्य और मनःस्वास्थ्य अच्छा रखकर जनता जनार्दनकी सेवा बेहद कर गये ।

इस पुस्तकको पढ़कर ब्रह्मचारी और गृहस्थी लोगोंको चाहिए कि वे अपने हृदयमें संत विनोबा और महात्मा गांधीके इस ब्रह्मचर्य जीवनको अंकित करें और शरीर स्वास्थ्य और मनःस्वास्थ्यको हांसिल करके जनता जनार्दन की सेवा जितनी हो सके उतनी करें यही सबसे विनम्र प्रार्थना है ।

—बालकोबा भावे

समर्पण

श्रद्धेय श्री द्वारिका प्रसाद गुप्त एक सद् गृहस्थ साधक हैं। उनके जीवनमें त्याग, तपस्या, कर्मयोग एवं ज्ञानयोग मानों एक ही स्थलपर साकार हो गये हैं।

उनकी सरलता, नम्रता और सादगी सभीको प्रभावित कर देती है। सत्यनिष्ठा उनका विशेष गुण है। जीवनके एक-एक पलका समाज हितमें सदोपयोग हो, इस ओर आपका विशेष ध्यान रहता है। नगीनाके प्रसिद्ध हिंदू कालेजके प्राचार्यके उच्च पदपर आसीन रहते हुए आपने विद्यार्थियोंसे सदा पुत्रवत व्यवहार किया और उनके चरित्र तथा व्यक्तित्वका निर्माण करनेका सफल प्रयोग भी किया फलस्वरूप भारत भरमें उच्च पदोंपर आसीन आपके विद्यार्थी आजभी आपके प्रति अपार श्रद्धा एवं भक्ति रखते हैं।

विवाहसे पूर्व आप अपने सुसंस्कारोंसे सहज रूपसे ब्रह्मचारी रहे, विवाहित जीवनमें भी संयम-नियमका पालन किया और एक नारी सदा ब्रह्मचारीकी उक्तिको चरितार्थ किया और आज ६५ वर्षकी आयुमें गत ४० वर्षसे पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करते हुये सतत समाज सेवामें रत हैं। आपके ब्रह्मचर्य पालनमें आपकी धर्मपत्नी बाधक नहीं सदा सहायक रहीं अतः वह भी अभिनंदनीय है।

आपका प्रण था कि उनकी एकमात्र संतान डा० सच्चिदानन्दके विवाहमें दहेज न लेना, स्वयं बारातमें न जाना एवं अन्तर्जातीय विवाह करना और ईश्वर ने ऐसा ही किया और अंतर्जातीयके साथ ही अंतर्प्रान्तीय विवाह हुआ।

ब्रह्मचर्य पालनमें "आहार शुद्धौ सत्व शुद्धिः" पर आप विशेष बल देते हैं। कई वर्षोंसे अन्नका प्रयोग किसी भी रूपमें नहीं करते। ऋषि आहार कंद, मूल, फल एवं सब्जियोंका सात्विक आहार ही परिमित मात्रामें ग्रहण करते हैं।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधीके सपनोंका भारत निर्माणके लिये वृद्धावस्थामें भी नौजवानोंकी तरह घूम-घूमकर अपने सादा जीवन, उच्च विचारके आदर्शोंका उपदेश करते हैं। प्राकृतिक जीवन एवं ब्रह्मचर्यके प्रति आपकी अनन्यनिष्ठा है।

ऐसे आदर्श महापुरुषको अपनी कृति "ब्रह्मचर्य विवाहके पहिले और विवाहके बाद" भेंट करते हुए मुझे विशेष गौरवका अनुभव हो रहा है।

दि० १५-३-८३ —हीरालाल

विषय सूची

विषय	पृष्ठ
१–हमारी दशा	१–३
२–जननेंद्रिय संस्थान	३–१०
३–नारी जननेंद्रिय	११–१६
४–कामेच्छा और उसका समाधान	१७–३७
५–ब्रह्मचर्य द्वारा चतुर्मुखी विकास	३७-५२
६-विवाहका उद्देश्य	५२–६६
७–ब्रह्मचारीकी श्रेणी	६७-७१
८–ब्रह्मचर्य रक्षाके सामान्य नियम	७१–१०१
९–वीर्य नाशके कारण	१०१-११३
१०–कुटेवोंसे होनेवाले फल	११३–१२३
११–रोग और उनकी चिकित्सा	१२३–१६०

ब्रह्मचर्य
विवाह के पहिले
और विवाह के बाद

हमारी दशा

आधुनिक युवक-युवतियोंका ओज, तेज एवं कांति इस प्रकार लोप हो गया है कि जिस प्रकार वर्षोंकी परतन्त्रताके पश्चात हमारी संस्कृति। जब हम अपने पूर्वज राम, कृष्ण, भीष्म, अर्जुन, हनुमान दयानंद, गार्गी एवं गांधी आदि, जिनकी कि हम संतान हैं, के जीवनपर गंभीरतासे विचार करते हैं तो अपने अंदर उनके पौरुष. नैतिक एवं आध्यात्मिक गुणोंका सर्वदा अभाव पाकर अपनेपर तरस एवं ग्लानि होती है कि हम उनकी संतान होनेका कैसे दम भर सकते है ?

क्या हमने कभी, स्वप्नमें भी, गँभीरतापूर्वक विचार किया, कि अपनी दशा उत्तरोत्तर क्यों इतनी गिरती जा रही है ? नहीं ! वास्तवमें यदि हमने कभी भी अपने चतुर्मुखी अधःपतनके कारणोंपर विचार किया होता तो उसी वक्त हम सावधान हो जाते और हमारी दशा अवनतिकी ओर न होकर उन्नतिकी ओर होती। वर्तमान समाज भोग-विलासमें इस प्रकार लिप्त है कि उसे अपने अस्तित्व एवं कर्तव्यका भान ही नहीं हो रहा है। इस कथनकी पुष्टि स्व० किशोर लालभाईने (स्त्री० पु० म० पृ० ८१) किया है:– "मैं तो आज देखता हूँ कि भर जवानीमें पोसी हुई अनेक सुखों और भोगोंकी आशाओंको बेरहमीसे खतम कर देनेमें ही हमारा पुरुषार्थ है।"

जब भ्रूण मांके पेटमें रहता है तभी अंडकी रचना शुरू हो जाती है एवं गर्भावस्थामें यह अंग उस भ्रूणके उदरमें ही रहता है किन्तु जन्मके १ मास पूर्व वह अण्डकोषमें उतर आता है और फिर तो उसीमें ही सदा स्थित रहता हैं। हमारे अंदर पुरुषत्व, शुक्राणु, उत्पादक शक्ति, ओज एवं तेज आदि हमारी अंडग्रंथिके स्वास्थ्यपर ही निर्भर करता है।

रोगी अवस्थामें, गर्मी पाकर एवं बुढ़ापेमें अण्डकोष बढ़ता है। पर ठण्डे पानीके सम्पर्कमें आने अथवा उसमें कुछ देर रखनेसे युवक एवं स्वस्थ व्यक्तिका अण्डकोष सिकुड़कर कस जाता है । अण्डकोषकी त्वचा ही स्थितिस्थापक (Elastic) होती है पर रोगी हो जानेपर तो यह वढ़, फैल एवं लटक जाती है। बाईं ओरकी अण्डधारक रज्जु दाहिनेकी अपेक्षा वड़ी होती है। इसीलिये बाँया अण्डकोष दाहिनेकी अपेक्षा नीचेकी ओर लटका हुआ दिखाई देता है।

अण्डग्रंथिकी रचना—अंड चिपटे–चिपटे १।।-२ इंच लम्वे, १ इन्च चौड़े और १।।-२ इन्च मोटे एवं ३/४ से १ औंस तक भारी भी होते हैं।

अण्डकोषके छोटे-वड़े होनेपर मनुष्यकी उत्पादक शक्ति निर्भर नहीं हैं वल्कि उस व्यक्तिकी शुक्राणु शक्तिपर है। अण्डकोषमें लचीलापन एवं कसाव होनेपर उत्पादक शक्ति अधिक एवं ढीला–ढाला होने पर कमोवेश असमर्थता प्रकट होती है। केवल एक अण्डग्रंथिके व्यक्तिमें भी उत्पादन शक्ति हो सकती है।

प्रत्येक अण्ड ग्रंथिमें कई खण्डिकायें। (Lobules) होती हैं, जिन्हें रेशायुक्त झिल्लियां अलग करती हैं, प्रत्येक खण्डिकाकी रचना जालकी तरह है और उसमें चक्करदार नलिकायें (Tubuli Semifere) होती हैं, जिनके द्वारा रक्त नलिकायें बंटी हुई हैं। इन सूक्ष्म नलिकाओंमें से ही वीर्य निकलता है. शुक्राणु बनता एवं परिपक्व होता है।

वीर्य—यों तो वीर्य अनेक प्रकारका होता है पर स्वस्थ वीर्य रंग रहित, पारदर्शक और गोल कण वाला होता है। इसमें वहुत अधिक संख्यामें शुक्राणु रहते हैं । वीर्यकी स्वस्थता, शुक्राणुकी संख्या एवं संतानोत्पत्तिकी क्षमतापर ही संतानोत्पत्ति निश्चित है।

वीर्य कोष—मूत्राशय एवं मलाशयके बीचमें स्थित है। इससे भी एक प्रकारका स्राव होता है, जो अण्डमें पैदा होनेवाले शुक्राणु को ले जाता है और संभोगके समय जब शुक्राणु रज:कणसे मिलता है तो गर्भ धारण होता है।

मूत्रेन्द्रिय—का कार्य दोहरा है। यह स्पंजकी तरह खोखला होता है। इसका प्रधान कार्य मूत्रोत्सर्ग है। किंतु इसके न रहने पर भी पेशाब हो सकता है। २५ वर्षकी आयुमें जब यह परिपक्व हो जाता है तो सुन्दर स्वस्थ सन्तानोत्पत्तिके काममें आता है पर कुत्सित भावना जागृत होनेपर इसे हाथसे स्पर्श करना अथवा कराना आत्मघातकी ओर अग्रसर होना है। जिस प्रकार नशाके उतरते ही थकान एवं शिथिलताकी अनुभूति होना स्वाभाविक होता है, उसी प्रकार कुविचारों एवं उसी प्रकारके वातावरण द्वारा उत्तेजित होनेपर उसकी प्रतिक्रिया तन-मन एवं उस अंगकी शिथिलता होती हैं।

इसमें अनेकों रक्तवाहिनी नलिकायें होती हैं और काम वासनाके समय रक्त इन नलिकाओंकी ओर तीव्र गतिसे जानेसे जननेन्द्रिय उत्तेजित, लंबी एवं मोटी होती है पर थोड़ी ही देरमें वह रक्त पानीके बुलबुलेकी तरह निःशक्त होकर हमारे अन्दर विजातीय द्रव्य बन जाता है। और इस द्रव्यका हमारे अन्दरसे बाहर निकलना अनिवार्य है वरना उससे अनेक रोग उत्पन्न हो सकते हैं।

इस अंगकी लंबाई-चौड़ाई शरीरके अनुसार होना निश्चित नहीं है क्योंकि ऐसा भी देखा जाता है कि खूब लम्बे-चौड़े एवं देखनेमें तगड़े व्यक्तिमें यह छोटा एवं अपेक्षाकृत साधारण डील-डौल वालेमें बड़ा होता है। अतः सन्तानोत्पत्तिकी दृष्टिसे छोटे-बड़ेका कोई महत्व नहीं है, पर सामान्यतः २-४ इन्च और उत्तेजित होकर तनाव होनेपर ५-७ इन्च तक भी लम्बा हो जाता है।

मुण्डाग्रचर्म—मूत्रेन्द्रियका गात्र एक पतली चमड़ीसे आगे मुख तक आच्छादित रहता है। इसको ही मुण्डाग्रचर्म कहते हैं। इस भागमें ज्ञान-वाहिनी रक्त नलिकायें आकर मिलती हैं और इसके स्वस्थ रहनेपर ही स्नायविक शक्ति प्राप्त होती है। इसी आधारपर जल चिकित्सक स्नायुको

सबल एवं चैतन्य बनानेके लिए इस स्थानका शीतल जल नहान-मेहन नहान (Cold fricction sitz bath) देते हैं।

इस चमड़ीके अन्त: भागपर अनेक सूक्ष्म ग्रंथियां होती हैं, जिनमेंसे एक विशेष प्रकारका स्राव होता है, जो वहां रह जानेपर हानि पहुँचाता है। अत: उसे नित्य शीतल जलसे धीरे-धीरे धोना अनिवार्य है वरना उस गंदगीके कारण वहां खुजलाहट होकर अथवा यों ही उत्तेजना द्वारा बेचैनी होना स्वाभाविक है। इसीलिए हिन्दू-मुसलमान आदि सभी धर्म गुरुओंने पेशाबके बाद सदा उस भागको शीतल जलसे धोनेका आदेश दिया है। ऐसा करनेसे हम जननेन्द्रिय सम्बन्धी अनेक रोगोंसे बच सकते हैं।

मुन्ड—मूत्रेन्द्रियका मुख कोणाकार होता है। इसीको मुण्ड कहते हैं। इस भागमें वसामय अनेकों ग्रंथियां होती हैं और उनसे एक प्रकारका स्राव होता रहता है और उसके अधिक देरतक रह जानेसे उत्तेजना, प्रदाह एवं शोथ होनेका भी भय रहता है। अत: इस स्रावको शीतल जलसे कम से कम प्रात: एवं सायं शौचके समय अवश्य ही साफ करना चाहिए।

मूत्र प्रणाली—(Urethra) शिश्नकी सम्पूर्ण लम्बाईमें से होकर गुजरनेवाली प्रणालीको कहते हैं। मूत्राशयमें स्थित मूत्र एवं शुक्राशयमें स्थित शुक्रको बाहर निकालना इसका प्रधान कार्य है। यों तो इसके दो कार्य हैं पर एक समयमें एक ही होता है। इसकी क्रियाको आसानीसे समझानेके लिये इसे निम्नांकित तीन भागोंमें विभाजित किया गया है

१—स्पंजी मूत्र प्रणाली—शिश्न मुखसे ५ इन्चतक अन्दरकी ओर होती है। इस भागकी मांस-पेशियोंकी सहायतासे मूत्र, वीर्य, एवं श्लेष्मा युक्त पदार्थ सुगमतासे बाहर आ जाता है।

२—कलामय मूत्र प्रणाली—मूत्र प्रणालीके बीचके भागको कहते हैं। पहिले भागकी समाप्तिसे अष्ठीला ग्रंथिकी शुरुआत तक रहता है एवं इसकी लम्बाई लगभग १ इन्च होती है और यह भाग जबतक शक्तिशाली रहता है तबतक वहांकी मांस पेशियां रोग-कीटाणुको बाहरसे भीतर आनेमें प्रतिरोध करती एवं मूत्राशयमें स्थित मूत्र द्वारको नियन्त्रित करती है।

३—अष्ठीलागत मूत्र प्रणाली—यह अंतिम भाग है। यह अष्ठीला ग्रंथिके बीचसे होता हुआ मूत्राशयके मुख तथा शुक्रवाहिनी नलिकाओंसे मिल जाता है। लघुशंका तथा रति सम्बन्धी इच्छाको जागृत करनेवाली ज्ञानवाहिनी नाड़ियोंका यहां केन्द्र रहता है। इसकी लम्बाई साधारणतः १॥ इन्च होती है।

कूपर ग्रंथियां—कलामय मूत्र प्रणाली जहां समाप्त होती है, वहां दोनों ओर मटरके बराबर दो ग्रंथियाँ होती है। उत्तेजनाके समय इनमेंसे क्षारीय स्राव होता है, जो चिकनाहटके साथ ही मूत्रकी अम्ल प्रतिक्रियाको उदासीन करता है। इस क्षारीय द्रवके न निकलनेपर अम्ल द्वारा वीर्य-कणकी जीवनी शक्ति नष्ट हो जाती है क्योंकि वीर्य क्षार गुण प्रधान होता है और उस मार्गसे पेशाबके बार-बार निकलनेसे वह अम्ल हो जाता है पर कूपर ग्रंथिका स्राव उस अम्लताको दूरकर वीर्यके लिये क्षारीय मार्ग प्रशस्त कर देता है।

ऐसे भी अवसर आते हैं जबकि उत्तेजित अवस्थामें वीर्यके बिना भी कूपर ग्रंथियोंका स्राव निकल पड़ता है और नवयुवक अनभिज्ञतावश उसे वीर्य समझकर घबड़ा उठता है और मां-बाप से छिपे-छिपे वह वैद्य, डाक्टर एवं हकीमोंका दरवाजा ही नहीं खटखटाता बल्कि समाचार पत्रोंमें विज्ञा-पित औषधियोंको मंगाकर सेवन भी करता है।

मानसिक उत्तेजना रहित वीर्य नाश उसी समय होता है जब मनुष्य वीर्यको नाश करते-करते उसे शक्तिहीन एवं पानीकी तरह पतला बना लेता है वरना ऋग्वेदमें बताये रति नियमानुसार आलिंगन, चुम्बन, दन्तकर्म, नखक्षत, सीत्कार, (मैथुनं कालिक असंबद्ध भाषण) प्रहषण, संवेशन (मैथुन के भिन्न-भिन्न आसन) उपसृत (स्त्रीके पास जाना) औपरिष्टक तथा नरायित होना चाहिये। नरायितके बाद हीं वीर्य स्खलन होना चाहिये पर सामान्य आधुनिक जीवनमें तो अधिकसे अधिक दर्शन, स्पर्श, आलिंगन एवं मैथुन तक ही सीमित है। क्योंकि समाजका वातावरण वेदोक्त मैथुन के लिये उतना अनुकूल नहीं है जितना होना चाहिये।

अष्ठीला ग्रंथि (Prostate glands)—यह पेशियों एवं ग्रंथियोंसे

मिलकर बना हुआ है। मूत्राशयसे ग्रीवा (Neck) के नीचे मूत्र प्रणालीको चारों ओरसे घेरे हुये रहता है एवं इसकी लम्बाई डेढ़ इन्च और चौड़ाई एक इन्चके करीब होती है।

पेशाब एवं वीर्यको बाहर निकालनेमें सहायता, मूत्राशयके मुंहका नियंत्रण करना एवं जननक्रियासे इसका विशेष सम्बन्ध है। बुढ़ापेमें यह ग्रंथि सिकुड़ जाती है और इसके बढ़ जानेपर पेशाब करनेमें कठिनाई होती है।

जब हम जवानीके जोशमें आकर जननेन्द्रियका मिथ्या अथवा अतियोग करके वीर्य एवं इस ग्रंथिको शक्तिहीन बना लेते हैं तो बुढ़ापेमें इसके बढ़ जानेसे मूत्रमार्गमें अवरुद्धता होना स्वाभाविक है। अण्डकोषके निकाल देनेपर भी इसकी शक्ति नष्ट हो जाती है। कामोत्तेजना होनेपर इस ग्रंथिकी प्रणालियां (नलिकायें) विशेष प्रकारके स्रावसे भर जाती हैं और वह वीर्यके साथ मिकलता है। यही कारण है कि मैथुनके पहिले पुरुषके जननेन्द्रियसे एक प्रकारका चिपचिपा पदार्थ निकलता है। वह यही स्राव है पर प्राय: लोग इसे वीर्य समझ लेते हैं, इसी प्रकार स्त्रीके योनिसे भी एक प्रकारका स्राव होता है। प्रकृतिने इन स्रावोंको केवल इस निमित्त बनाया है कि संभोगके समय स्त्री–पुरुष दोनोंके लिये यह चिकनाहटका काम करे और किसी प्रकारका कष्ट न हो।

शुक्राशय––मूत्राशय एवं मलाशयके बीच दो झिल्लीदार थैलियोंमें स्थित है। वीर्य अण्डकोषसे निकलकर इनमें इकट्ठा होता है। कामोत्तेजनाके समय इनमेंसे स्वयं भी एक प्रकारका स्राव होता है। वह स्राव वीर्य कणको बहाते हुये बाहर भी ले जाता है। साधारणत: इसकी लम्बाई २॥ इन्च होती है, इसमें एकत्रित वीर्य या तो शरीरमें खपकर ओज एवं शक्ति प्रदान करता है अथवा उत्तेजित होकर बाहर निकल जाता है।

शुक्राशयके स्रावमें एलब्युमिन एवं क्षारीय तत्व होता है।

शुक्रस्रोत––शुक्राशयसे दो शुक्र स्रोत जो पौन इन्च लम्बा होता है एवं सम्पूर्ण अष्ठीला ग्रंथिसे होकर गुजरता है और यह वीर्य कोषके दोनों ओर स्थित है।

शुक्राणु—कामोत्तेजनाके कारण जब अण्डकोष उत्तेजित होते हैं तो उनमेंसे हजारों शुक्राणु निकलकर शुक्रवाहिनीसे शुक्र स्रोत प्रणालीतक पूरे भागको भर देते हैं। शुक्राणुके एक पूछ होती है। एकबारके वीर्य स्खलनमें २ से ५ करोड़ तक शुक्राणु पाये जाते हैं पर गर्भ धारण तो केवल एक से ही होता है। यह शुक्राणु जब स्त्रीके रज:कणसे मिलता है तो गर्भ स्थित होता है।

प्रत्येक माता-पिताके चरित्र एवं अन्य गुणोंके प्रतीक उनके शुक्राणु एवं रज:कण होते हैं इसीलिये दोनोंको सदा अपना सात्विक आहार–विहार द्वारा सात्विक गुण उन्नत करनेका निरन्तर प्रयत्न करना चाहिये।

नशीली एवं उत्तेजक वस्तुयें—शराब, चाय, तम्बाकू और मिर्च मसाला आदि एवं दूषित वातावरणका शुक्राणुपर बहुत ही विनाशकारी प्रभाव पड़ता है। गीतामें वर्णन है —

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरुक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदा: ॥ ९ ॥ १७ ॥

कड़वे, खट्टे, लवण युक्त और अति गरम तथा तीक्ष्ण रूखे और दाहकारक एवं दु:ख चिंता और रोगों को उत्पन्नकरने वाले आहार राजसी।

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ ११॥१७॥

जो भोजन अधपका रसरहित और दुर्गन्धयुक्त एवं बासी और उच्छिष्ट और अपवित्र तामसी भोजन नहीं लेना चाहिये।

लोगोंमें यह भ्रम है कि जब करोड़ों शुक्राणु होते हैं तो किसी न किसीसे गर्भ धारण तो होगा ही पर वास्तवमें रज:कणके अंदर इनमेंसे केवल एक ही प्रविष्ट हो सकता है और शेष सब घुलकर बाहर निकल जाते हैं।

प्राय: देखा जाता है कि बच्चे अर्ध विकसित एवं कुरूप पैदा होते हैं। उसका एकमात्र कारण यह है कि अनभिज्ञतावश गर्भवतीसे संभोग करनेपर भ्रूण की वृद्धि रुक जाती है और उसके भविष्यके स्वास्थ्यपर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। गर्भावस्थामें माताको अनमनस्कता एवं

मिचली आदि भी हो सकती है एवँ नैतिक दृष्टिसे भी इस समयका संभोग उचित नहीं है।

शुक्राणु एवं रजःकणका परिपक्व होना—इस उत्तेजक वातावरणके युगमें तो लड़के १४-१५ वर्षकी आयुसे ही अनभिज्ञतावश अपनेको कामोत्तेजनाकी बलि वेदीपर चढ़ाना शुरू कर देते हैं पर वास्तवमें शुक्राणु २५ एवं रजःकण १६ वर्षकी आयुके पूर्व अपरिपक्वावस्थामें ही रहता है और इस अवस्थाके पूर्व ही जो अपनी वर्षोंकी संचित कमाई नष्ट करने लगने हैं उनका तन, मन एवं धनसे विनाश होना निश्चित ही है। पाठक आसानीसे जान एवं समझ सकते हैं कि जिस शुक्राणु एवं रजःकणमें संतानोत्पत्तिकी अनुपम शक्ति है, क्या वह हमारे अंदर रग-रगमें रमकर हमारी शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक-शक्तिको उन्नत नहीं कर सकता ? अवश्य कर कर सकता है. अतः हमें सात्विक आहाराद्वारा वीर्य एवं रजकी रक्षा करनी चाहिये। सात्विक आहारके सम्बन्धमें गीतामें वर्णन है।

आयुः सत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिराहृद्या आहाराः सात्त्विक प्रियाः ॥८॥१७॥

आयु, बुद्धि बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाला एवं रस युक्त, चिकने और स्थिर रहनेवाले तथा स्वभावसे ही मनको प्रिय, ऐसे आहार तो सात्विक पुरुषको प्रिय होते हैं। इसके लिये अपक्वाहार अंकुरित अन्नकण, फल, सब्जी, कंद, मूल, धारोष्ण दूध एवं दही सर्वोत्तम है।

शुक्राणु एवं वीर्यमें भेद—शुक्राणु केवल अण्डकोषमें पैदा होता है पर वीर्यमें तो कई प्रकारके स्राव, शुक्राशयका स्राव, अष्ठीला एवं कूपर ग्रंथिका स्राव भी शामिल है।

वीर्यका रंग दुधियाला और कुछ-कुछ क्षारीय होता है एवं इसमें फासफोरस तथा कैलशियम अधिक मात्रामें होता है। यही कारण है कि जिस व्यक्तिका वीर्य अधिक नष्ट हो जाता है, उसके शरीरमें कैलशियम एवं फासफोरसका अभाव होकर उनकी हड्डियों एवं फेफड़ोंका क्षय होना प्रारम्भ हो जाता है और अन्तमें वह यक्ष्मा, चाहे वह हड्डीकी हो अथवा फेफड़ेकी, के शिकार होते हैं अतः ऐसे घातक रोगोंमें ब्रह्मचर्य आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है।

नारी जननेन्द्रिय

प्रजनन क्रियासे सम्बन्वित स्त्रीके अवयव उसके पेडू प्रदेशमें होते हैं। इनमें दो अण्डाशय एवं एक गर्भाशय होता है। अण्डाशय चपटी बादामकी तरह कद और आकारके होते हैं एवं गर्भाशयका कद छोटे अमरूदके समान होता है।

कन्या १३–१४ वर्षकी आयुमें उसके अण्डाशयोंमें अण्डोंका जन्म होने लगता है एवं सैकड़ों अण्डे न्यूनाधिक पक्व दशामें रहते हैं। प्रत्येक अट्ठाइसवें या तीसवें दिन इनमेंसे एक और कभी-कभी दो अंडे पूरी तरह परिपक्व होते है। जब अण्डा पूरी तरह पकनेको होता है तब गर्भाशयके आंतरिक भागमें सूजन आ जाती है और वहाँ रक्त इकट्ठा होने लगता है। अण्डेके भली-भांति परिपक्व होकर अण्डाशयसे अलग होनेपर गर्भाशयके आसपास जमे रक्तका स्राव होने लगता है। इस तरह यह तीनसे सात दिनतक रक्त स्राव होता है पर सामान्यतः इसकी अवधि ४ दिन ही मानी गई है। बोल-चालकी बोलीमें इसे कपड़ेसे आना, और शिक्षित लोगोमें मासिम धर्म या मासिक स्राव कहा जाता है।

मासिक स्रावसे गर्भाशय अच्छी तरह धुलकर साफ हो जाता है और इस समय अण्डाशयसे निकला हुआ अंडा अंडाशय को गर्भाशयसे जोड़ने वाली रजःवाहिनी नामक नली द्वारा धीरे-धीरे गर्भाशयकी ओर आता है। माना यह जाता है कि इस तरह परिपक्व अंडेको अण्डाशयसे गर्भाशय तक आनेमें ३-५ दिन लग जाते हैं। यह अंडा गर्भाशयमें आनेके बाद कुछ दिन वहीं रहता है और फिर योनि मार्गसे बाहर निकल जाता है। पर स्मरण रहे कि सभी अंडे एकसे नहीं होते। इन अंडोंका व्यास $\frac{1}{120}$ इंच से $\frac{1}{240}$ इंच तक होता है जब यह गर्भाशय के अंदर होता है, उस समय यदि स्त्री-पुरुष सम्भोग हो और पुरुषका शुक्रबीज इससे आ मिले तो अंडा फल जाता है। मतलब यह कि स्त्रीके अंडेमें जो एक बहुत ही सूक्ष्म जीव बीज है उसके साथ पुरुषका शुक्र कीटमें पाया जाने वाला जीव-बीज मिल जाता है,

एवं इन दो जीव बीजोंके मिलनेसे एक नया जीव उत्पन्न होता है जिसमें बढ़नेकी क्षमता है। यों तो अलग-अलग न तो पुरुषका शुक्रकीट और न नारीका अंडे वाला जीव बीज बढ़नेकी क्षमता रखता हैं। नारीके अंडे वाले जीव बीज और पुरुषके शुक्र कीट वाले जीव बीजके परस्पर जिनमें से गर्भ रहता है। यह गर्भ मासिक धर्म द्वारा स्वच्छ बने हुए गर्भाशयमें रहता है। इस प्रकार गर्भवती होनेपर उसकी सुरक्षाके लिये गर्भाशयका मुंह बंद होकर मासिक स्राव रुक जाता है।

गर्भाशय तीन इंच लम्बा आड़ूके आकारका होता है। नारी योनिके ऊपर स्थित है एवं एक छोटी नलीसे सम्बन्धित है। गर्भाशयके निचले भागको गर्भाशय द्वार कहते हैं। गर्भाशयकी दीवारें मोटी मांश पेशियोंसे बनी हैं। इसके ऊपर वाले कोनेसे दो अंडप्रणालियां निकलती हैं। वे प्रणा-लियां तीन इन्च लम्बी और $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{8}$ इंच तक चौड़ी होती हैं। इनमेंसे प्रत्येक प्रणाली का अंतिम वहिर्भाग डिंव ग्रंथिके पास होता है। डिंव ग्रंथि बिना छिले बादामके रूप और आयतनकी होती है और गर्भाशयके दोनों ओर स्थित हैं। योनि गर्भाशयमें खुलता है और गर्भाशय अंडप्रणालियोंमें।

डिंव ग्रंथियोंमें बहुत छोटी पेशियां होती हैं और उनमें मादा पेशियोंमें विकसित होनेकी क्षमता होती है। यह पेशियाँ इतनी छोटी होती हैं कि आंखोंसे दिखाई नहीं दे सकतीं पर यदि किसी तरह दिखाई भी दे सकें तो सफेद कण सी दीख पड़ेंगी। लगभग हर २८ वें दिन अर्थात् दो मासिक स्रावोंके बीचके समयमें डिंव ग्रंथियां एक मादा पेशी छोड़ती हैं। ये मादा पेशी अंडप्रणालीमें चली जाती हैं।

अतः मासिकस्राव डिंब ग्रंथियोंके इस कार्यसे सम्बन्धित है। मादा-पेशी प्रत्येक मासके नियत समयपर मुक्त होती है। अधिकांशमें यह मासिक स्रावके १४ दिन पूर्व मुक्त होती हैं। इंसीलिये मासिक स्राव तभी शुरू होता है जब झिल्लीकी ऊपरी तहका बढ़ना रुक जाता है और वह ढीली पड़ने लग जाती है। नई ग्रंथियां और छोटी-छोटी नालियां इस ऊपर तहको बनाती हैं और इस ढांचाके ढीला पड़ते ही रक्तका प्रवाह आरंभ हो जाता है और वह बादमें झिल्लीके गिर जानेपर उसे बहाकर ले जाता है।

मासिक स्रावके अंतमें यह झिल्ली पूरी तरह नष्ट हो जाती है। इसके बाद वह फिर बनने लगती है और फिर सारी विधि दुहराई जाती है। पहिले मासिक स्रावके आरंभके २८ दिन बाद दूसरा मासिक स्राव शुरू होता है।

मासिक स्राव——यह एक ऐसा विषय है जिसके सम्बन्धमें सभी कन्याओंको जानकारी रखना आवश्यक है । ठंडे प्रदेश एवं सात्विक भोजन करने वालीको अधिक पर गरम प्रदेश, और तामसी एवं उत्तेजक आहार तथा वातावरण वालीको कम आयुमें ही शुरू हो जाता है पर सामान्यतः १३–१४ वर्षकी आयुमें होना चाहिये। जिसका मासिक स्राव जितनी ही कम अवस्थामें शुरू होगा उतनी ही जल्दी बन्द भी होगा। इसीलिये इसके शुरू होनेकी आयु १३–१६ वर्ष एवं बंद होनेकी आयु ४४–४८ वर्ष तक मानी गई है।

इस कालमें कन्याके मनमें नये–नये विचार एवं भावनायें भी पैदा होती हैं। शरीरमें थकान, उत्तेजित मनोदशा एवं कभी–कभी रुलाईकी भी अवस्था हो जाती है। ऐसे समयमें कन्याके साथ प्रेम एवं सावधानी बर्तना चाहिए। कन्या यदि इन परिवर्तनोंका कारण समझ ले तो उसे परीशान, घबराने एवं अधीर होनेकी नौबत नहीं आयेगी और वह समझ जायगी कि उसके नारित्वका उदय होकर वह तारुण्यमें प्रवेश कर रही है।

मासिक स्रावसे भय——जिन्हें मासिकके सम्बन्धमें जानकारी नहीं होती है वह रक्त स्राव देखतेही घबड़ाकर उसे भयंकर रोग मान बैठती हैं और अपनेसे बड़ोंसे इसकी चर्चा करते भी शर्माती एवं सकुचाती हैं और उसका उपचार अज्ञानतावश उलटा-सीधा कुछका कुछ कर बैठती हैं। कई तो खूनके दागको चुपचाप धोकर फिर उसी गीले कपड़ेको पहिन लेती हैं जिससे मासिक स्राव पर बुरा प्रभाव पड़ता है और कभी–कभी तो मासिक स्राव सदाके लिए बंद भी हो जाता है और फलस्वरूप अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं जिससे मानसिक संतुलन भी बिगड़ जाता है।

तरुणावस्था—मे प्रवेश करनेका मासिक स्राव एक बाह्य चिन्ह है। माता बननेकी शारीरिक तैयारी है पर इसका अर्थ आप यह न समझ लें कि इसी आयुमें ही माता बनना अनिवार्य है। हाँ, इसका अर्थ केवल इतना ही

है कि जननेन्द्रिय अपने प्रधान कार्यको करनेमें समर्थ हो गई है पर अभी वह कच्ची कलीकी भांति है और सम्पूर्ण विकास होनेमें वर्षोंकी देर है।

मासिक स्राव—नारीका एक शारीरिक स्राव है। यह स्वस्थ शरीरमें बिना किसी पीड़ाके होना चाहिये पर यदि किसी प्रकारकी पीड़ा हो तो समझना चाहिये कि स्वास्थ्यमें कहीं गड़बड़ी है। इसमें या तो गलत तरहसे कपड़े पहिनने या आहार-विहारका दोष या किसी कुटेवका हाथ होता है। मासिक स्रावके दौरान असावधानीके कारण सर्दी लगने या अधिक श्रम करनेसे भी यह कष्टदायी हो जाता है। कब्ज वाली लड़कियोंका भी यही हाल होता है क्योंकि जिन्हें नियमित शौच जानेकी आदत नहीं होती और शौच साफ नहीं होता उनके मलाशय एवं बड़ी आंतोंमें मल भर जानेके कारण गर्भाशय एवं अण्डाशयपर अधिक दबाव पड़ता है, कब्ज रक्त संचालनमें भी रुकावट डालता है एवं कसकर कपड़ा पहिनने या लहंगा अथवा पेटी कोटके नारे कसकर बांधनेसे भी पेड़ू प्रदेशके अवयवों पर अनावश्यक दबाव पड़नेसे उनका उचित विकास नहीं हो पाता।

समयसे पूर्व क्यों—जो लड़कियां स्वाभाविक विकास एवं सौंदर्यके खिलाफ बनावटी जिंदगी वितातीं, उत्तेजक आहार करतीं, मन विकृतकारी साहित्य पढ़तीं, उत्तेजक वातावरणमें रहतीं, क्रीम, पावडर, लिपस्टिक एवं लाली आदि कृत्रिम प्रसाधन द्वारा श्रृंगार करती उन्हें निश्चित समयसे पूर्व मासिक स्राव होता है। उनकी वही दशा होती है जो समयसे पूर्व खिले हुये फूलोंकी।

मासिक स्रावके पूर्व चिन्ह—यों तो अनेक असाधारण लक्षण दिखाई देते हैं पर सामान्यतः बेचैनी, आलस, संपूर्ण शरीरपर विशेषकर सिरका भारीपन होना और कमरमें साधारणसा दर्द रहना आदि पूर्व चिन्ह हैं। इन सबचिन्होंके बावजूद भी यदि मासिक स्राव न हो तो गड़बड़ी ही समझना चाहिये।

प्रथम मासिक स्रावके बाद यदि कई मासतक स्राव न हो और साधारण स्वास्थ्य भी ठीक हो तो किसी प्रकारकी चिंता नहीं करनी चाहिये

क्योंकि मासिक स्राव प्राय: नियमित होनेमें १–२ वर्ष भी लग सकता है।

मासिक स्रावकी मात्रा––अल्प मात्रामें भी स्राव होनेपर घबरानेकी जरूरत नहीं है क्योंकि इससे प्रकट होता है कि शरीरमें सफाई अधिक है और गंदगी कम किंतु यदि कम स्रावके साथ पीड़ा एवं अन्य प्रकारके उपद्रव हों तो उसे रोग समझना चाहिये पर अधिक स्राव होना कृत्रिम जीवनका फल है। यदि साधारणसे अधिक स्राव हो और कमजोरी भी हो तो समझना चाहिये कि स्राव जरूरतसे ज्यादा हुआ है, इसका कारण शरीरकी अशुद्धि, अथवा रक्तका वहां आवश्यकतासे अधिक संचय है। इस अवस्थामें खुली हवा, सादा भोजन एवं पूर्ण शारीरिक–मानसिक–विश्राम आवश्यक है।

यों तो आहार शास्त्री प्रो० श्री एरनाल्ड एह्रेटका कहना है कि शरीरके पूर्ण रूपसे शुद्ध रहनेपर स्राव होना स्वाभाविक नहीं है क्योंकि इसके द्वारा शरीरसे गंदगी ही तो निकलती है। जैसाकि प्राय: देखा गया है कि प्राकृतिक जीवन, चिकित्सा एवं आहार विहारके बाद कुछ महीनोंके लिये जब तक कि साधारण भोजन पर न आया जाय मासिक बन्द हो जाता है पर इससे किसी प्रकारकी परीशानी नहीं होती। हां यदि परीशानी हो तो उसका कारण रोग समझना चाहिए।

मासिक स्रावके कुछ दिन पूर्व एवं उस दौरान गर्भाशयके अंदर रक्तकी मात्रा बढ़ जाती है इसलिए यह भारी मालूम होता है। गर्भाशय पेड़ूके अंदर उसकी गुफामें लटका हुआ एक अवयव है अतएव मासिकके दिनोंमें खूब चलने–दौड़ने–कूदने या अधिक मेहनतके कामोंसे अपनेको बचाना चाहिए। उस समय स्त्रीको आरामकी आवश्यकता होती है अत: अस्पृश्यताका विधान रखा गया है ताकि अपने आप विश्राम मिल जाय। पर स्त्रियां इसका गलत अर्थ लगाकर भोजन बनाने आदिसे बचकर ढेरों बर्तन एवं कपड़ा आदि साफ करनेमें लग जाती हैं। इस प्रकार बहुत परिवारोंमें स्त्रियोंको बिल्कुल आराम ही नहीं मिलता जिससे अधिक हानि होती है। इन कामों के करनेके कारण गीले रहनेसे सर्दी लग जाती है एवं भारी वजन उठानेसे गर्भाशय च्युत होनेका भी भय रहता है क्योंकि उस समय यह बहुत ढीली–ढाली अवस्थामें रहता है।

छोटे-मोटे काम तो किये जा सकते हैं पर एक आसनपर देर तक काम न करें, अपेक्षाकृत अधिक नहीं सोना चाहिए एवं दुर्बल स्त्रियोंको अधिकसे अधिक विश्राम करना चाहिए।

यों तो विकारोत्तेजक साहित्य सदा बुरा है पर इस समय तो अवश्य ही इससे अपनेको बचाना चाहिए।

दो दिन तक न तो नहाने और न कपड़ा बदलनेका ही रिवाज है पर यह गलत है। यह दोनों काम आवश्यक हैं क्योंकि इन दिनों तो ज्यादा साफ-सुथरा रहना चाहिए। हां, दुर्बल स्त्रियोंको एवं अधिक ठंडकके दिनोंमें गुनगुने एवं शेष को शेष ऋतुमें ठंडे जलसे पर कम देर तक नहा कर एवं सूखा घर्षण कर बदन अच्छी तरह सुखा लें पर स्मरण रहे कि न तो पैर और न पेड़ू प्रदेशमें ही ठंडक लगनी चाहिये।

ऋतु कालके सम्बन्धमें मनुस्मृति अध्याय ३ में वर्णन है—

ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः।
चतुर्भिरितरैंयः सार्धमहोभिः सद्विगर्हितः ॥ ४६ ॥

स्त्रियोंका स्वाभाविक ऋतु काल रजोदर्शन १६ अहोरात्र है इसमें चार दिनभी सम्मिलित हैं; जिन्हें सज्जन स्त्री समागमके लिये निषिद्ध ठहराते हैं। ४६ ॥

किस अवस्थामें बंद होता है—यों तो अनेक रोगोंमें भी मासिक स्राव बंद हो जाता है पर स्वाभाविक रूपमें तो गर्भाधान हो जानेपर बंद हो जाता है क्योंकि उस समय झिल्ली मोटी हो जाती है और वह टूटती नहीं और उसका उपयोग भ्रूणकी सुरक्षामें होने लगता है। इस समय डिंब ग्रंथियोंसे मादा पेशी पैदा नहीं होतीं। सामान्यतः बालकके जन्मके कई महीनों पश्चात् तक मासिक स्राव प्रारम्भ नहीं होता।

जब गर्भाशयपर चर्बी बढ़ जाती है और शरीरमें रक्त एवं क्षारके बदले पानी एवं अम्लताकी अधिकता हो जाती है तो मासिक बंद हो जाता है अथवा वह रक्त न रहकर पीला-पीला दो चार बूंद स्राव आकर फिर बंद हो जाता है।

कामेच्छा और उसका समाधान

सामान्य जीवनमें अन्य कामनाओंके साथ कामेच्छाका भी होना स्वाभाविक माना गया है और जीवनमें उसका महत्वभी और शास्त्रोंमें जीवनके चार लक्ष्य अर्थ, धर्म, काम, मोक्षका ही वर्णन है। यहां तक कि जो निराहार एवं फलाहारपर रहते हैं उन्हें भी यह कभी-कभी सताता है जैसा कि भगवान कृष्णने गीतामें कहा है :—

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्टवा निवर्तते ॥ (गीता अ०२, श्लो०५१)

जब देहधारी निराहार रहता है, तब उसके विषय शिथिल हो जाते हैं, पर रस नहीं छूटता, रस तो परमात्माका साक्षात्कार होनेपर ही छूटता है। इसी प्रकार वैराग्य साहित्यमें भी कहा गया है:—

"भमि शयन तन बसन करी, फल भक्षत आराम ।
निशि दिन रहत अरण्यमें, तेहु सतावत काम ।।"

पर प्रकृतिने इस कामकी पूर्ति एवं तृप्तिका उचित मार्ग भी संबोधित किया है अतः उन नियमोंको अच्छी तरह समझ एवं ग्रहण कर लेनेपर संभव है हम अपनी इस इच्छाकी पूर्ति अनुचित ढंगसे न करके सही, स्वाभाविक एवं सामयिक करेंगे। इस विषयमें आचार्यका कहना है कि मनुष्यकी आयु १०० वर्ष मानी गई है और कामशास्त्रके अनुसार उसे निम्नांकित भागोंमें विभाजित किया गया है:—

सं०	अवस्था	आयु	सं०	अवस्था	आयु
१—	बाल्यावस्था	१६ वर्ष तक	२—	युवावस्था	१६ से ७० वर्ष तक
३—	वृद्धावस्था	७० वर्षके बाद			

पर वेदके अनुसार चार आश्रम बताये गये हैं और उसीके अनुसार उनका कर्म भी बताया गया है।

सं०	आश्रम	आयु	सं०	आश्रम	आयु
१—	ब्रह्मचर्य	२५ वर्षतक	२—	गृहस्थ	२५-५० वर्षतक
३—	वानप्रस्थ	५०-७५ वर्षतक	४—	सन्यास	७५-१०० वर्षतक

१-ब्रह्मचर्याश्रम—में विद्याध्ययन, ध्यान एवं ब्रह्मचर्यकी रक्षा करनी चाहिए।

२—गृहस्थाश्रम— जवानीमें, काम एवं अर्थकी प्राप्ति करनी चाहिए।

३—वानप्रस्थाश्रम—में धर्म एवं सेवाका कार्य करना चाहिए।

४—सन्यासाश्रम—में संसारके मोहको छोड़कर मोक्षकी प्राप्ति करना चाहिये।

आचार्य एवं वेदके दृष्टिकोणको देखते हुए वेद ने चार आश्रमोंको मानकर चलनेमें ही अधिक सुविधा एवं भलाई है किन्तु जब हम इन नियमों का उल्लंघन एवं दुरुपयोग करेंगे तो विनाशकारी फलका होना निश्चित है जैसा कि-पू० गाँधीजी ने लिखा है :—

"यह ठीक है कि संतानोत्पत्ति प्राकृतिक घटना है किंतु तब जबकि निश्चित सीमाओंके भीतर हो। उन सीमाओंका उल्लंघन स्त्री जातिको खतरे में डाल देता है, वंशको दुर्वल बनाता है, रोगोंको उभाड़ता है, पापको प्रोत्साहन देता है और संसारको राक्षसी बनाता है और साथ ही पुरुष भी रसातल को जाता है।"

बहुतोंका यह दावा है और इसमें वास्तविकता भी है कि मनुष्य जीवनभर बिना किसी प्रकारके शारीरिक-मानसिक दोषके भी संयमी रह सकता है और पति एवं पत्नीके बीचमें भी कामुक आकर्षण अप्राकृतिक है पर ऐसे व्यक्ति कुछ ही हो सकते हैं और वे पूजनीय हैं जैसाकि अनसूया एवं अत्रि ऋषि तपस्या करते-करते वृद्धावस्थाको प्राप्त हो गये पर एक-दूसरेको भली प्रकार न देख सके और देखे भी तो उस समय जब दोनोंके बाल सफेद हो गये। ऋषि अपने अध्ययनमें लीन रहते थे और अनुसूया ऋषिके लिये साधन संग्रह करनेमें।

इसी प्रकार वाल्टनसे किसीने पूछा कि आपने शादी क्यों नहींकी तो उन्होंने उत्तर दिया "मेरा तो गहरा प्रेम अध्ययनसे हो गया है और शादीकी याद ही नहीं आती।"

आज इस युगमें संत बिनोवा भी नैष्ठिक ब्रह्मचारी माने जाते हैं और उनके जीवनका एकमात्र प्रेम गरीबोंकी सेवा है। जो मनुष्य स्वप्नमें भी विषयी विचारोंसे मुक्त रहते हैं उनके लिए अन्य इन्द्रियोंका संयम करना बहुत ही आसान है किंतु सर्व-साधारणके लिए इस पराकाष्ठापर पहुँच सकना असंभव है अतः इस प्रकारकी इच्छा कब स्वाभाविक होती है और होनी चाहिए सर्वसाधारणके लिए जान लेना आवश्यक है।

कामका कारण––प्रायः लोग यह दलील देते हैं कि संसारमें प्राणियों का वंश चालू रहे इसलिये उनमें 'काम' जाग्रत होता है। यह वाक्य ठीक है पर इसका अर्थ भी समझ लेना आवश्यक है। इस सम्बन्धमें श्री किशोरलाल भाईने लिखा है "लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि जब-जब काम विकार पैदा होता है तब-तब वह वंश वृद्धिकी ही इच्छाके कारण ही पैदा होता है" स्त्री पुरुष म० पृष्ठ १५८।

मनुष्यके हृदयमें व्याप्त कामनाओंकी खलबली ही काम विकारका रूप लेती है। वह क्रोध, लोभ वगैरहका रूप भी ले सकती है, जैसाकि गीताके अध्याय २ में बताया गया है।

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥ ६२ ॥

विषयोंको चिन्तन करने वाले पुरुषकी उन विषयोंमें आसक्ति हो जाती है (और) आसक्ति से (उन विषयों की) कामना उत्पन्न होती है (और) कामनामें विघ्न पड़नेमे क्रोध उत्पन्न होता है।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभंशाद्बुद्धिनाशोबुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ ६३ ॥

क्रोधसे अविवेक अर्थात् मूढ़ भाव उत्पन्न होता है (और) अविवेकसे स्मरण शक्ति भ्रमित हो जाती है और स्मृतिके भ्रमित हो जानेसे बुद्धि अर्थात् ज्ञान शक्तिका नाश हो जाता है और बुद्धिके नाश हो जानेसे (यह पुरुष) अपने श्रेय साधनसे गिर जाता है।

काम, ज्ञान तंतुओंमें पैदा होनेवाला, एक तनाव है। कई कारणोंसे ज्ञान तंतुओंमें अलग-अलग तनाव होता है। क्रोध, लोभ, डर वगैरहकी तरह

काम विकारका तनाव भी कभी बाह्य और कभी आंतरिक कारणोंसे हमारे ज्ञान तंतुओंको अस्वस्थ कर देता है। इसी आधार पर एक रूसी विद्वानने कहा है "Love is nervous disease" प्यार स्नायुविक रोग हैं। प्यार चाहे किसी भी प्रकारका क्यों न हो, उसमें स्नायुविक संतुलन रहना कठिन हो जाता है।

बदलती हुई ऋतुओंसे होनेवाले शारीरिक परिवर्तन कई प्रकारके प्राणियोंमें अस्वस्थता उत्पन्न कर देते हैं उसी प्रकार इन ऋतुओंका काम पर भी प्रभाव पड़ता है, जैसा कि बसंत ऋतुमें कामका वेग अधिक माना जाता है और उसे ऋतुराज कहा जाता है।

पर वास्तवमें सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय तो इस निष्कर्षपर पहुँचेंगे कि शरीरमें जितना ही अधिक विजातीय द्रव्य होगा उतना ही काम-विकार जाग्रत होगा, जैसा कि प्राकृतिक चिकित्साके दौरान अनुभव किया जाता है कि ज्यों-ज्यों विजातीय द्रव्य निष्कासित होता है विकार भी शांत होता चला जाता है। इस सम्बन्धमें श्री किशोरलाल भाईने स्त्री पु० म० में भी लिखा है।

"मेरे अनुमानसे इसका मतलब यह है कि मनुष्यके ज्ञान तंतुओंकी व्यवस्थामें कुछ बिगाड़ करनेवाले द्रव्य (Toxins) पैदा होते हैं और उन्हें बाहर फेंक देना जरूरी होता है लेकिन वे आसानीसे बाहर नहीं निकलते नतीजा यह होता है कि जिस तरह आंतोंमें इकट्ठा होनेवाले विकारका बिगाड़ मनुष्यको अस्वस्थ बना देता है उसी तरह ज्ञान तंतुओंमें भरा हुआ बिगाड़ भी उसे अस्वस्थ कर देता है। ज्ञान तंतु-व्यवस्था सारे शरीरपर फैली हुई है, इसलिए उस बिगाड़का असर मनुष्य सारे शरीरपर अनुभव करता है और काम विकार उठनेपर मनुष्यमें जो दूसरेमें लिपटने-चिपटने वगैरहकी एवं स्पर्शेच्छा तीव्र हो जाती है, वह इसीका नतीजा है।"

"पचीसवें वर्षकी उम्रतक तो काम विकारके दर्शनको वंश वृद्धि यानी विवाहकी, इच्छा-भावना ही नहीं होनी चाहिए। वह कई कारणोंसे तंतुओंमें पैदा होनेवाली उत्तेजना मात्र है। संतति निरोधके उपायोंवाला या उनसे रहित स्त्री पुरुष सम्बन्ध इसका इलाज नहीं है।"

"यही वह उम्र है कि जब मनुष्यको संभल जाना चाहिए वरना इस समयकी गलतीसे जीवन भर रोना पड़ता है। साधारणत: देखा जाता है १४ वर्ष के लड़केमें इस प्रकारका कोई भी परिवर्तन नहीं होता पर १५ से २५ वर्ष तक की आयुको ही उठती हुई जवानी कहते हैं। इस समय उनके शारीरिक एवी बौद्धिक विकासमें महत्वपूर्ण परिवर्तन होता है, जैसे मूछोंकी रेखें उठने लगत हैं, नाभि तथा जननेन्द्रिय प्रदेशमें बाल दिखाई देने लगते हैं, आवाजमें बल आ जाता है। उत्पादक अंगमें विकास एवं वृद्धि शुरू हो जानेसे वीर्य संपादन शुरू हो जाता है और लड़कियोंमें भी मासिक स्रावकी शुरुआत लगभग इसी १४-१५ वर्षकी अवस्थामें ही होती हैं और वे तारुण्य जीवनमें प्रवेश करती हैं, किंतु निश्चित समयके पहिले शुरू होनेका कारण है हमारे यहांका गलत मानसिक एवं नैतिक वायुमंडल। १०-१२ वर्षकी ही आयुसे घरवाले लड़कीसे उसके मासिक स्राव एवं विवाहकी बात करना शुरूकर देते हैं जिसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव उसके मासिक पर भी पड़ना स्वभाविक है। इसके अलावा आजकलके उत्तेजक खानपानका प्रभाव पड़ता ही हैं।"

यह तो केवल युवावस्थाकी शुरुआत है पर परिपक्व युवक–युवती बननेके लिए अधिक समय एवं संयमकी आवश्यकता होती है, किंतु मां-बाप इस तैयारीके कालको ही विवाहका समय समझकर युवक-युवतियोंकी उठती हुई जवानीपर तुषारपात कर देते हैं अथवा यों कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी कि उनकी सारी कामनाओंपर पानी फेर देते हैं क्योंकि इस कोमल, किशोरावस्थामें शरीरकी हड्डी, पेशी एवं तंतु इस कार्यके लिए पूर्णरूपसे विकसित एवं उन्नत नहीं हो पाते अतः इस समय उत्पादक तत्वका भी परिपक्वावस्थामें होना संभव नहीं है। इस अवस्थामें वैवाहिक जीवनमें पदार्पण करनेसे विकास रुक जाता है और अपनेको युवक-युवती कहलानेका दम भरने वाले अनेक प्रकारके रोगोंका शिकार होते हुए भी पाये जाते हैं, फलस्वरूप कीट–पतंगोंकी भांति जीवन बिताकर अकालके गालमें जाते हुए देखे जाते हैं।

अब आप समझ गये होंगे कि लड़केकी १५ से २५ वर्षतक की अवस्था के आरंभको किशोर और समाप्तिको युवावस्थाका प्रारम्भ कहते हैं. इसी प्रकार लड़कियोंके लिए भी १४ से २० वर्षतक की आयु माननी चाहिए। यही

अवस्था है जबकि युवक–युवती अपनेको संभालें, सतर्क रहें और ओज एवं कांति, जिसके लिए अनेक कृत्रिम वस्तु एवं रंग अपनाई जाती हैं, के भंडार वीर्य एवं रजका संग्रहकर समय आनेपर उचित एवं सामयिक उपयोग करें वरना अनाप–शनाप खर्च करनेसे दिवाला निकलना (रोगी होना) निश्चित है और फलस्वरूप उन्हें रो-रोकर दुःखी जीवन बिताना पड़ेगा ।

यों तो जवानीमें ही जोश, खरोश, बल और चंचलता उमड़ी पड़ती है पर यह टिकाऊ नहीं, बल्कि क्षणिक होती है, जैसाकि कहा गया है :—

"गिरि नदी वेगोपमं यौवनम"

पहाड़ी नदीकी उफानकी तरह यौवन समाप्त हो जाता है। वास्तवमें यदि आप अपने स्वास्थ्यमें स्थायित्व लाना चाहते हैं तो इस समय आप **"सादा जीवन उच्चविचार"** के सिद्धांतको मान एवं व्यवहार कर चलें। इसी में ही आपका एवं समाजका कल्याण निहित है ।

सादा एवं प्राकृतिक जीवन बितानेके साथ ही पवित्र विचार भी रखनेसे किशोरावस्था देरसे आती है पर इसके विपरीत अप्राकृतिक, अनियंत्रित, एवं असंयमित जीवन बितानेके साथ ही अपवित्र विचार रखनेसे समयके पूर्व ही लड़का दाढ़ी-मूछ वाला और लड़की उभड़ी हुई स्तनवाली तथा मासिक स्रावमें प्रवेश करती हुई दिखाई देती है। समयसे पूर्व किसी भी लक्षण का दिखाई देना उसी प्रकार उपयोगी नहीं है, जिस प्रकार कलमी वृक्ष एवं रासायनिक खाद प्रयोग किये धरती से उत्पन्न फल, सब्जी एवं अन्न अपेक्षाकृत कम अवस्थामें अधिक एवं बड़े फल देने लगते हैं एवं कम समयमें पकने भी लगते हैं पर बीजू फलकी भांति न तो उनमें तेजी, न स्वाद और न उतने पौष्टिक तत्व ही होते हैं। क्योंकि उन पौदों और फलों को पर्याप्त, धूप, पानी एवं वायु नहीं मिल पाता जो कि प्राणीमात्रका जीवन स्रोत है। इसकी पुष्टि श्री किशोरलाल भाई ने स्त्री० पु० म० पृ० १६४ में की है:—

"जिन प्राणियोंका तरुणावस्थामें प्रवेश करनेका समय जल्दी शुरू हो, जाता है तथा जो शीघ्र गतिसे तरुण बन जाते हैं, उन प्राणियोंकी उम्र, शक्ति एवं तेज वगैरह कम होती है। जिनका बाल्यकाल लम्बे समय तक रहता हैते किशोरावस्था धीरे-धीरे बढ़ती है और जो किशोरावस्थामें निर्विकार रह,

हैं, उनकी उम्र, शक्ति, एवं तेज वगैरह ज्यादा होती है। किशोरावस्था और कच्ची तरुणावस्थामें जीवन शक्ति ही सर्वांगीण विकासका सबसे बड़ा साधन है।"

पुरुषत्व प्राप्त करनेमें ग्रन्थियोंका प्रभाव

हमारे अंदर अनेक प्रकारकी बाह्य एवं अंतः स्रावी ग्रंथियां पाई जाती और उनके स्रावपर हमारा शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास निर्भर करता है अतः उनमेंसे उन ग्रंथियोंकी, जिनसे हमारे जननेन्द्रिय संस्थानका विशेष सम्बन्ध है, जानकारी कर लेना आवश्यक है।

अंड-ग्रन्थि—की रचनाके सम्बन्धमें तो बताया ही जा चुका है और अब उनके स्रावके बारेमें भी जान लेना आवश्यक है। किशोरावस्थामें शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन होनेका प्रधान कारण है अंड ग्रन्थिका अंदर-बाहर होने वाला स्राव। पाठक आये दिन देखते हैं कि पशु-घोड़ा बैल आदि, का अंड-ग्रन्थि निकाल लेनेपर वह पुरुषत्वहीन हो जाता है और प्रकृतिका यही नियम पुरुषोंके लिये भी लागू होता है कि यौवनसे पहिले दोनों अंड-ग्रन्थियाँ निकाल लेनेसे हिजड़ापन आ जाता है यानी वह संतानोत्पत्ति नहीं कर सकता। पुरुषत्वका अभाव होनेपर उनके अंदर जनानापन आना स्वाभाविक है। उनके हाव-भाव, उठक-बैठक एवं चाल-ढ़ाल आदि औरतों से मिलते-जुलते हैं। हिजड़े कौन ? यह भी तो अंड-ग्रन्थि विहीन पुरुष हैं।

आजसे लगभग २२० वर्ष पूर्व हर साल इटलीमें ४००० लड़कोंके अंड-ग्रन्थि केवल इसलिए निकाल दिये जाते थे कि वह गाने-बजानेकी कलाका सफलतापूर्वक संपादन करके लोगोंको अपनी ओर आकर्षित कर सकें।

आयु एवं स्वास्थ्यके अनुसार ही इन ग्रंथियोंकी उन्नति एवं क्षति होती है और यह ग्रंथियाँ जिस प्रकार पुष्ट एवं कमजोर होंगी उसी प्रकार हमारा भी होना स्वाभाविक है, यही कारण है कि बुढ़ापे के साथ जब इन ग्रंथियों का ह्रास होता हैं तो पुरुषत्व अभावकी अनुभूति होती है अतः ५० वर्ष की

आयुके बाद बानप्रस्थाश्रम में परस्पर स्त्री-पुरुष प्रसंग वर्जित किया गया है। यद्यपि पुरुषमें ७० वर्ष तक संतानोत्पादक शक्ति रहती है फिर भी वृद्धावस्थाकी संतान सबल एवं स्वस्थ नहीं हो सकती जितनी युवावस्था की। सद् विचारों से यह ग्रंथियां सबल और कुविचारोंसे निर्बल होती हैं।

आंतरिक स्राव तो बचपनसे प्रारम्भ होकर हमारे अंदरही रमकर हमें स्वस्थ बनाता है पर बाह्य स्राव तो शुक्राणुके परिपक्व होने पर ही बड़ी आयुमें होता है और प्रजनन क्रियामें यही सहायक होता है।

यह स्राव लसीका (lymph) एवं रक्त द्वारा हमारे स्नायुविक केन्द्र रीढ़ एवं मस्तिष्कमें पहुँचकर उन्हें शक्तिशाली बनाता है और यही उस समय युवकके मुख-मंडलपर ओज, तेज एवं कांति झलकती है। यही समय है जब उसमें एक प्रकारके आकर्षणका प्रादुर्भाव होता है। जब हमारे अंदर अंतः स्रावका जज्ब होना रुक जानेपर हमारे विकासपर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। समयके पूर्व इस स्रावका उपयोग करनेपर हमारे अंदर वह ओज एवं तेज नहीं रहता जो महापुरुषोंकी आकृतिसे झलकता है। गोस्वामीजीने (रामचरित मा० अयोध्या काण्ड) में भरत के बारे में कहा है।

देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। घटइ तेजु बलु मुख छबि सोई॥

इस अंतः स्रावको ही ओज, एवं बहिःस्रावको, बीज, शुक्र एवं रेतस कहते हैं। बहिः स्राव न होनेपर वही तत्व हमारे अंदर अंतः स्रावके रूप में खपकर (रम कर) हमें तेजस्वी, ओजस्वी बनाता है और जब बहिःस्राव होना आरंभ होता है तो उसके साथ ही मनुष्यका तेज-बल शनैःशनैः क्षीण होने लगता है।

२५ वर्षकी अवस्थामें हमारे अंदर शुक्राणु जब परिपक्व हो जाते हैं तो धीरे-धीरे बहिःस्राव भी निरंतर होने लगता है और थोड़ी-थोड़ी मात्रामें वीर्य-कोषमें वीर्य एकत्र होने लगता है।

चुल्लिका-ग्रन्थि (Thyroid gland)–यह ग्रीवामें होती है। उसके दो पार्श्विक खंड होते हैं, जो आगे टेंटुवेके सामने एक तंग भाग द्वारा एक दूसरे से जुड़े होते हैं। उसकी लम्बाई दो इन्च, चौड़ाई १ इन्च एवं मोटाई $\frac{1}{2}$-$\frac{3}{4}$ इन्च के लगभग होती है। यह स्त्रियोंमें पुरुषकी अपेक्षा बड़ी होती है। जब

स्त्री रजस्वला या गर्भवती होती है तब उसमें कुछ वृद्धि हो जाती है।

यह स्वास्थ्यके लिये बहुत ही आवश्यक ग्रंथि है। इसका बढ़ना या छोटा होना, इसका कम काम करना-ये दोनों ही बातें स्वास्थ्य के लिये ठीक नहीं हैं। इस ग्रन्थिके ठीक काम न करने पर स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता।

चुल्लिकाग्रन्थिमें जो वस्तु बनती है उसके कम या बिल्कुल न बनने से मूर्खता आ जाती है और ऐसे बच्चोंका विकास भी ठीक-ठीक नहीं हो पाता। बच्चा अपने सहारे खड़ा नहीं हो सकता और जीवित रहे तो आयुके साथ उसके अंग विकसित नहीं होते। यौवनके चिन्ह भी उपस्थित नहीं होते।

इसके विकृत होने से और भी रोग विशेषकर स्त्रियोंमें स्थूलता, त्वचाका मोटापन एवं रूखापन, बाल गिरना, चेहरेका फूलना, ओठ मोटे, नथुनोंका चौड़ा और मोटा होना, विचार एवं स्मरण शक्तिका ह्रास, शरीरका तापक्रम कम, स्वभाव में चिड़चिड़ापन होता है एवं रोग बढ़ते जाने पर एक प्रकार का पागलपन हो जाता है।

जब यह आवश्यकतासे अधिक काम करती है तो भी स्वास्थ्य खराब हो जाता है। ऐसी अवस्थामें हृदयकी गति तीव्र हो जाती है, आंखें आगे को निकल आती हैं, ग्रंथि बढ़ जाती है एवं हाथ कांपने लगते हैं। इसके अलावा रक्तहीनता, दुबलापन एवं कमजोरी बढ़कर अंतमें मंद ज्वर भी रहने लगता है। यह ग्रंथि वसा-संवर्तन एवं ओषजनीकरण के लिये आवश्यक है और जब यह काम कम करती है या निकाल दी जाती है तो वह व्यक्ति मोटा हो जाता है। कैलशियम के समापवर्तन के लिये इसका महत्वपूर्ण स्थान है। ठीक काम न करने पर हड्डियों की रचना ठीक-ठीक नहीं हो पाती। यकृत को शर्कराजन से शर्करा बनाने में भी सहायता देती है।

शरीरमें बनने वाले विषैले पदार्थोंका नाश करती है। यह गर्भावस्था में बढ़ जाती है क्योंकि भ्रूणके बर्धनसे बने विषाक्त पदार्थोंको निकालना पड़ता है अतः गर्भिणीको क्षार प्रधान आहार लेना चाहिये।

शरीरकी वृद्धि, बुद्धि, जननेंन्द्रियोंके ठीक-ठीक विकास एवं अप्रधान लैंगिक चिन्होंके प्रकट होनेसे भी एक विशेष संबंध है।

इन ग्रंथियोंके दोष पूर्ण होनेसे शरीर में जब कैलशियमकी कमी हो जाती है तो टिटनस ऐसे भयंकर रोग हो जाते हैं।

उप चुल्लिका ग्रंथि (Parathy roidgland)–मटरके आकार एवं परिमाणकी होती हैं। चुल्लिका के दाहिनी एवं बाईं ओर दो–दो रहती हैं और ये चुल्लिका ग्रंथिके पार्श्विक खंडोंके पिछले किनारोंसे लगी रहती हैं।

इन ग्रंथियों का भी करीब करीब वही कार्य है जो चुल्लिका का।

पीयूषिका ग्रंथि (Pituitry gland)–यह पिंड अंडाकार होता है एवं जतूकास्थिके हाइयोफिसिस खातमें रहता है। इसका अग्र पश्चात् व्यास $\frac{1}{3}$ इंच एवं एक पार्श्वसे दूसरे पार्श्व तक का माप $\frac{1}{2}$ इंच और मोटाई $\frac{1}{4}$ इंच के लगभग होती है। उसका भार ०.८ ग्राम होता है। इसके दो खंड होते हैं एक अगला दूसरा पिछला। पिछला खंड एक खोखले डंठल द्वारा मस्तिष्क के तीसरे कोष्ठसे संबंध रखता है। कंकालके विविध भागोंका बढ़ना इसी ग्रंथि के ठीक–ठीक काम करने पर निर्भर है। इस ग्रंथि से "पिटुइट्रीन" नामक एक अत्यंत उपयोगी औषधि बनाई जाती है।

पीयूषिका ग्रंथिके अगले खंडका कार्य—गर्भावस्थामें कम काम करनेसे भ्रूणकी अस्थियाँ ठीक नहीं बनतीं, बौनापन जिसके साथ-साथ शरीर स्थूल हो जाता है और जननेंद्रियकी उचित बाढ़ नहीं होती, कूल्हों, खवों और ग्रीवा में वसा विशेष रूपसे इकट्ठा हो जाती है, जननेंद्रिय नहीं बढ़ती, पुरुषमें शुक्र कीट नहीं बनते और स्त्रीमें रजोदर्शन नहीं होता। कभी-कभी अंडकोष तक नहीं उतरता। यौवन प्राप्तिके पश्चात् व्यक्ति सुस्त रहता है, नींद आया करती है एवं सहज में ही थक जाता है।

पैदा होनेके पश्चात् उस खंडसे अधिक काम करनेसे अतिकायता (Acromegaly) नामक रोग होता है, इसमें हाथ, पैर, नीचेका जबड़ा और चेहरेकी हड्डियाँ बड़ी हो जाती हैं, पुरुषोंमें नपुंसकता और स्त्रियोंमें रजोदर्शन नहीं होता, मूत्रमें द्राक्षोज आने लगता है एवं शरीर दुबला हो जाता है। पीयूषिकाके अग्रपिंडका जननेंद्रियोंसे एक विशेष सम्बन्ध है। इसके विना डिब ग्रंथि अपना कार्य नहीं करती, स्त्रियोंमें मासिक स्राव नहीं होता या कम होता है। जब यह खंड अधिक कार्य करता है तो मासिक स्राव

इतना अधिक होता है कि रक्तके अधिक बहनेसे मृत्यु तक हो जाती है।

पीयूषिकाके पश्च खंडके कार्य—जो रस इस भागमें बनता है, उसमें गर्भाशय, मूत्राशय, बृहदंत्र इत्यादि अंगोंके अनैच्छिक मांसको सिकोड़नेकी शक्ति है। इसीलिये इस वस्तुका प्रयोग प्रसवकाल में किया जाता है।

शीर्ष ग्रंथि (Pineal gland)—इस ग्रंथिका कार्य लैंगिक चिन्होंको शीघ्र उत्पन्न न होने देना है। एक ६ वर्षकी कन्या एक जवान स्त्रीके समान मालूम होती थी। उसके वक्षस्थल एवं विटप प्रदेशों में वाल उग आये थे, उसको मासिक स्राव होता था। उसकी छाती खूब बढ़ी थी। मृत्युके पश्चात् ज्ञात हुआ कि एक गुल्मके कारण शीष ग्रंथि जाती रही थी। उसका रस शरीरमें वसा इकट्ठा होने में सहायता देता था। शिशुओंका मोटापन शीर्षग्रंथि एवं उण्डूक ग्रंथि द्वारा होता है।

डिंब ग्रंथियों (Thymus gland)-की रचनाके बारेमें तो बताया ही जा चुका है अब यहां जननेन्द्रियपर पड़ने वाले प्रभावके बारेमें जानना आवश्यक है। डिंब ग्रंथि भ्रूणावस्थामें अच्छी तरह बने परन्तु यौवनपर वे न बढ़ें तो व्यक्तिमें वचपन रहता है। यौवन कालमें डिंब परिपक्व नहीं होते, छाती नहीं बढ़ती, वक्षस्थल एवं बिटप प्रदेशोंमें बाल नहीं उगते, चेहरेसे बचपन टपकता है। प्रायः इन सभी ग्रंथियोंको ठीक रखनेके लिए सर्वांगासन, हलासन एवं मत्स्यासन तथा अपक्वाहार बहुत ही उपयोगी सिद्ध होता है।

वीर्यकी उत्पत्ति

किसीके मुखकी कांति एवं ओज ही शरीरका सार तत्व "वीर्य" है। जिसकी रक्षाके लिए साधारण व्यक्ति ही नहीं ऋषि मुनि एवं महापुरुष निरंतर तपस्या एवं प्रयत्न करते आये हैं। इस पर संयम प्राप्तकर लेनेपर ही वास्तविक शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास एवं आनन्दकी अनुभूति होती है, और उनमें मृत्युको भी वशमें करनेकी क्षमता हो जाती है। इसके संबंधमें ऋग्वेदमें भी कहा गया है :—

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ।
इन्द्रोह ब्रह्मचर्येण देवेभ्य स्वरामरत ॥ (अथर्ववेद)

ब्रह्मचर्य और तपसे देवताओंने मृत्युको जीत लिया । वास्तवमें यदि हम अमरत्व और देवत्व (दिव्यत्व) पाना चाहते हैं तो हमें अंदर एवं बाहरके ब्रह्मचर्यको पूरी तरह अपनाना चाहिए ।

न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम् ॥

तपको तप नहीं कहा जाता ब्रह्मचर्य तप ही सर्वोत्तम है । ब्रह्मचारीके तपसे इंद्रका भी सिंहासन डगमगाने लगता है और वह अपनेको सर्वोपरि रखने और अपनी रक्षाके लिए तपस्वीके ब्रह्मचर्यको भंग करनेका प्रयत्न करता है । इस प्रकारके अनेकों उदाहरण पुराणोंमें आये हैं । जिसका एक ज्वलंत प्रमाण मेनका द्वारा विश्वामित्रका ब्रह्मचर्य भंग कराना तो सर्वविदित ही है । इसकार्य के लिये इंद्रके दरबारमें अप्सरायें भी रहती है ।

'धर्मार्थ काम मोक्षाणामारोग्यंमूल मुत्तमम्'

धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिका मूल आरोग्य ही है ।

त्रयस्तभाः स्वास्थ्यस्य आहारः निद्रा ब्रह्मचर्यञ्चेति ।

आहार निद्रा और ब्रह्मचर्य ये अरोग्यरूपी भवनके तीन स्तम्भ हैं । आचार्य सुश्रुत सूत्र स्थान में वर्णन है ।

आहार शयन ब्रह्मचर्यैः युक्त्या प्रयोजितैः ।
शरीरं धार्यते नित्यमागारमिव धारशैः ॥

जिस प्रकार आधार (स्तम्भादि)पर भवन टिका रहता है उसी प्रकार आहार, संयमऔर ब्रह्मचर्य युक्तिपूर्वक आचरण करनेसे शरीर टिका रहता है ।

ब्रह्मचर्य (वीर्य रक्षा)के नियम एवं महत्वको जाननेके पहले उसकी रचना एवं उत्पत्ति के बारेमें भी जान लेना आवश्यक है ताकि उसके महत्व को जानते हुए उसकी रक्षाके नियमोंका भी ठीक-ठीक पालन किया जा सके । योंतो इसपर अनेकों मत हैं पर यहां तो मैं आयुर्वेद की प्रसिद्ध पुस्तक सुश्रुतका मत दे रहा हूँ:—

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसाम्मेदः प्रजायते ।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जःशुक्रस्यसम्भवः ॥ (भाव प्रकाश)

मनुष्य जो कुछ खाता है वह पाचन रसकी क्रिया द्वारा प्रथम रस, रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे हड्डी, हड्डीसे मज्जा, मज्जासे वीर्य वनता है जो सबका सार रूप है, और इस वीर्यके शरीरमें रम जानेपर ओज पैदा होता है।

एक धातुसे पचकर दूसरी धातु बननेमें पांच दिन लगते हैं, इसप्रकार आजके खाये हुए भोजनका वीर्य तीसवें दिन बनेगा अतः किसी भी भोजनका हमारे शरीरपर क्या प्रभाव पड़ता है। यह तीसवें दिनके बाद आसानीसे जाना जा सकता है। सार तत्व तो शरीरमें रह जाता है पर पाचनकी प्रत्येक क्रियाके दौरानमें बचा हुआ कूड़ा-कचरा, (विजातीय द्रव्य) मल, मूत्र, पसीना, बाल, नाखून आदिके रूपमें निकलता है। इस वीर्यके खप जानेपर ही हमारा शरीर ओजवान होता है जैसाकि वाग्भठ्ने कहा हैः—

ओजश्च तेजो धातूनाँ शुक्रान्तानां परंस्मृतम् ।
हृदय स्थमपि तद् व्यापि देह स्थिति निबन्धनम् ।।
यस्य प्रवृद्धौ देहस्थ तुष्टि पुष्टि बलोदयाः ।
यन्नाशे नियतो नाशो यस्मिंस्तिष्ठति जीवनम् ।।
निष्पद्यन्ते यतो भावा विविधा देह संश्रयाः ।
उत्साह, प्रतिभा धैर्य लावण्य सुकुमारताः ।। (भावप्रकाश)

रससे लेकर वीर्य तक सातों धातुओंका जो तेज है उसे ओज ही कहते हैं। ओज प्रधानतः हृदयमें रहता है पर वह समस्त शरीरमें व्याप्त है। ओजसकी वृद्धिसे ही तुष्टि, पुष्टि और बलकी उत्पत्ति होती है। ओजसके नाशसे ही मृत्यु होती है। यह ओजस पदार्थ ही जीवनका आधार है। इसीसे उत्साह प्रतिभा धैर्य, लावण्य और कोमलताकी प्राप्ति होती है।

पश्चिमी विद्वान डा० कोवनने लिखा है 'शरीरके किसी भागमें से यदि ४० औंस रुधिर निकाल लिया जाय तो वह १ औंस वीर्यके बराबर होता है यानी ४० औंस रक्तसे १ औंस वीर्य बनता है।"

इतना जान लेनेके बाद यह भी जान लेना आवश्यक है कि कितने भोजनसे कितना वीर्य बनता है। इसके संबंधमें विद्वानोंकी इसप्रकार राय है—

४० किलो खूराकसे १ किलो रक्त, १ किलो रक्तसे १०-२० ग्राम वीर्य

बनता है यानी १ ग्राम वीर्य=४०० ग्राम रक्तके । किसी-किसी विद्वानका यह मत है कि ६० औंस रक्तसे १ औंस वीर्य बनता है। कुछ भी हो पर यह तो निश्चित ही है कि ४०-६० भाग रक्तपर १ भाग वीर्य बनता है और यह जीवनका सत्व है।

यहां अब यह भी तो जान लेना आवश्यक है कि आखिर यह 'ओजस' आता कहां से है। इस संबंधमें महर्षि सुश्रुत कहते हैं-

रसादिनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेजस्तत् ।
खल्वोजस्त-देवबलमिति ।

"रससे शुक्र तक सातों धातुओंके परम तेज भागको 'ओजस' कहते हैं, यही बल है ।" ओजसका स्थान कहां है और कैसा है इस संवंधमें आयुर्वेद-कर्णधार शारंगधरने कहा है:-

ओज: सर्व शरीरस्थं स्निग्धं शीतं स्थिरं सितम् ।
सोमात्मकं शरीरस्य बलपुष्टि करं मतम् ।

ओजस सारे शरीरमें रहता है। यह स्निग्ध शीतल, स्थिर, श्वेतवर्ण सोभात्मक, और शरीरको बल और पुष्टिका देने वाला है।

शुक्रं सौम्यं सितं स्निग्धं बल पुष्टि करं स्मृतम् ।
गर्भ बीजं वपु: सारो जीवस्याश्रय उत्तम: ॥

वीर्य, सौम्य श्वेत, स्निग्ध बल और पुष्टिकारक, गर्भका बीज, शरीरका श्रेष्ठ सार और जीवनका प्रधान आश्रय है।

यथा पयसि सर्पिस्तु गुढश्चेक्षौरसायथा ।
एवं हि सकले काये शुक्रं तिष्ठति देहिनाम् ॥ (भाव प्रकाश)

सबके शरीरमें उसी प्रकार व्याप्त है जैसे दूधमें घी, और ईख के रसमें गुड़ । यही कारण है कि जैसे दूधमें से मक्खन निकालने में दूधको मथना और ईखमें सेरस गुड़ निकालनेमें ईखको निचोड़ना पड़ता है वैसेही एक एक बूंद वीर्य निकालनेके लिये शरीरको मथना अथवा यों कहियेकि निचोड़ डालना पड़ता है। यही कारण है वीर्य नाशके बाद थकान, गिरावट एवं आलसकी अनुभूति होती हैं और मनुष्य निस्तेज, सार-हीन एवं खोखला हो जाता है। वीर्य नाशका स्पष्ट अर्थ है मनुष्य का चतुर्मुखी पतन होना

जैसा कि शिव संहित में लिखा है:—

मरणं बिन्दु पातेन जीवनं विन्दु धारणात् ।
तस्मादति प्रयत्नेन कुरुते विन्दु धारणम् ॥

विन्दु पातसे ही मृत्यु है और इस बिन्दुके धारणमें ही जीवन है। आपने पढ़ा एवं सुना होगा कि भगवान शंकर वीर्य धारणके प्रतापसे ही हलाहल विष पीकर भी प्रसन्नचित्त रहते थे एवं आवश्यकता पड़नेपर हनुमान धौलागिरि पर्वतको उठा लाये। सुश्रुतमें कहा गया है :—

आहारस्य परंधाम शुक्रं तद्रक्ष्य प्रयतात्मनः ।
क्षयो यस्य बहुन रोगान् मरणं वा नियच्छति ॥
देहस्याव य वस्तेन व्याप्तो भवति देहीनाम् ।
तद्भावाच्च शीर्यंते शरीराणि शरीरोणाम् ॥

वीर्य आहारका अंतिम रूप है। इसकी प्रयत्न पूर्वक रक्षाकी जानी चाहिए। वीर्यके नाशसे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं क्योंकि वीर्य शरीरके अवयवमें व्याप्त है उसके अभावसे शरीरका क्रमशः नाश हो जाता है। **शुक्रायत्तं बलं पुंसा।** वीर्यको मनुष्यकी जीवनी शक्ति कहा है :—

धातु क्षयात् क्षते रक्ते मन्दः संजायतेऽनलः ।

धातुके नाशसे रक्त कमजोर हो जाता है और रक्त कमजोर होनेसे अग्नि या भूख कमजोर होती है। इसीलिए आप प्रायः देखेंगे कि अधिक वासना प्रिय लोगोंको हजार प्रयत्न करनेपर भी भूख नहीं लगती और उस समय अधिकसे अधिक खानेपर भी दिनों दिन कमजोर एवं दुर्बल होते चले जाते हैं।

इस बातकी पुष्टि महर्षि पातंजलिने अपने इस सूत्र "**ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायाम् वीर्य लाभः**" में की है ब्रह्मचर्यकी स्थिरतासे वीर्य लाभ होता है। यहां वीर्यके दो अर्थ होंगे :—

(१) हम इस नामसे जिसे पहिचानते हैं वह शरीरका सजीव पदार्थ-जिसे हम आगे शुक्र नाम देंगे।

(२) उत्साह, साहस, पुरुषार्थ करने की शक्ति। लाभका अर्थ है प्राप्ति और वृद्धि। योगकी सिद्धिके लिए जो पांच शर्तें रखी गई हैं, उनमेंसे

वीर्य यानी उत्साह भी एक शर्त है।

पातंजलि योग दर्शनमें योगके आठ अंगमें यमके अंतर्गत ब्रह्मचर्यका बड़ा महत्व है। अतः योग सिद्धिके लिये भी ब्रह्मचर्य ही आधार शिला है।

वीर्यकी महिमा

"वीर्य धारणं ब्रह्मचर्यम्"—वेद

"वीर्य धारणकोही ब्रह्मचर्य कहते हैं। आप जिस ब्रह्मचर्य महिमाका गुण-गान सुनते हैं वह वीर्य धारणका ही दूसरा नाम है। आज हमारे बीच हनुमान एवं भीष्म नहीं हैं और उनके युगको भी बीते सहस्त्रों वर्ष हो गये फिर भी हम उनका गुणगान करते हैं। क्या आपने कभी यह सोचा कि आखिर उनका इतना महत्व क्यों ? उसका मूल कारण है उनका आजन्म "ब्रह्मचर्य" व्रतका पालन।

वास्तवमें यह अकाट्य सत्य है कि ब्रह्मचर्य प्राप्त करनेपर ही हम किसी प्रकारके भी पुरुषार्थकी कुंजी प्राप्त कर सकते हैं। मनुष्य इसे धारण करके सदा स्वस्थ एवं सुखी रहता है, अकाल, बुढ़ापा एवं मृत्युसे भी रक्षा होती है। इसके ही प्रतापसे हृष्ट-पुष्ट, बलिष्ट, ओजवान एवं कर्तव्य परायण संतान होती है। मनुष्य दीर्घ-जीवी, श्रुतिसंपन्न, सत्यवादी एवं जितेन्द्रिय होता है। इससे योग-साधनमें रुचि और सिद्धि प्राप्त होती है और मनुष्य निर्भय, निर्लोभी एवं निष्कामी होकर संसार-सेवा कर अंतमें मोक्ष प्राप्तकर सकता है। भगवानने गीतामें कहा है "यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य चरन्ति" ८।११। परमात्माकी प्राप्तिके इच्चुक ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं। स्व० श्री किशोरलाल भाईने भी लिखा है "ब्रम्हचर्यका अर्थ है ब्रह्म या ईश्वरके मार्ग पर चर्या (चलना) सब शक्तियोंका ईश्वरके मार्गमें उपयोग करना ही ब्रह्मचर्य है।" स्त्री० पुरुष० म० पृ० १८८। इसी प्रकार चरकने भी लिखा है कि मोक्ष प्राप्तिके लिए भी ब्रह्मचर्य आवश्यक है।

"सता मुपासनं सम्यग सतां परिवर्जनम्।
व्रतचर्यो पवासश्च नियमाश्च पृथग्विधाः ॥ १४३ (द्रू० भा०)

सज्जनोंकी सेवा, दुर्जनोंका त्याग, ब्रह्मचर्य, उपवास, नाना प्रकारके नियमका धर्म शास्त्रोंका अभ्यास आत्मा आदिका जानना आवश्यक है।

ब्रह्मचारी केवल अपना ही भार नहीं संभालता बल्कि पृथ्वीका भी जैसा कि वेदके इस मन्त्र "सदाचार पृथिवी दिवंच," ब्रह्मचारी पृथ्वी और द्यौको धारण किये हुए हैं। से प्रकट है।

वास्तवमें जो पूर्ण ब्रह्मचारी है वही शरीरको धारण करता है और उसीका जीवन सार्थक है पर आज तो हमलोग शरीरको नहीं बल्कि शरीर हमें धारण किये हुये होता है।

शरीर वास्तवमें हमें बांधे हुये है और हम शरीरको तनिक भी रोके हुये अथवा धारण किये हुये नहीं है।

स्वामी रामतीर्थने ब्रह्मचर्य के सम्बन्धमें कहा है "यदि तुम दुनियाँको हिलाना चाहते हो तो दुनियाँ को ऐसी जगहसे पकड़ो जो तुम्हारे सबसे अधिक नजदीक हो अर्थात् अपने आपको पकड़ो।"

"जिस ब्रह्मचारीने उस परम लक्ष्यकी ओर मुंह उठा लिया है, ब्रह्मकी चर्याका ब्रत ले लिया है। उसकी सहायताके लिए उसकी दिव्य शक्तियां- उसके देव क्यों नहीं उठ खड़े होंगे ? इंद्रियां ब्रह्मचारीकी सदा अनुवर्तिनी हो जाती हैं।"

केवल इतना ही नहीं समाजके रक्षार्थ असुरोंको नाश करनेकी शक्ति ब्रह्मचर्यमें है और इसीके लिए ही विश्वामित्र राम और लक्ष्मण ऐसे ब्रह्म-चारियोंको असुरोंसे अपने यज्ञ–रक्षार्थ राजा दशरथसे मांग कर ले गये और उनका यज्ञ सफल रहा। भगवान कृष्णने भी गीतामें शत्रु-विजयका यही एक उपाय बताया है :—

द्वन्द्व सहनं तपः अर्वा गन्य इतो अन्य पृथिव्याः
अग्नी समेतो नभ सी अन्तरे मे तपो श्रयन्ते रश्मयोऽधिदृढा
तावातिष्ठाति तपसा ब्रह्मचारी।

उस अंतरिक्षमें इन दोनों अग्नियोंकी किरणें परस्पर टकराती हैं, दृढ़ताके साथ खींचतान करती हैं, किंतु ब्रह्मचारी विचलित नहीं होता और न वह पार्थिव अग्निकी किरणके वशीभूत होता है किंतु दोनोंपर संतुलित

होकर खड़ा रहता है। जैसा कि प्रश्नोपनिषदमें वर्णन है--

तेषोमेवैप स्वर्गलोकोयेषां। तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम्॥

स्वर्गलोक उन्हीं लोगोंके लिए है जो तपस्वी ब्रह्मचारी और सत्य- निष्ठ है।

ब्रह्मचारीके प्रकार

ब्रह्मचारी कई प्रकारके होते हैं पर ऊर्ध्व रेता उत्तम प्रकारका माना गया है। ऊर्ध्व रेता उन्हें कहते हैं जो वीर्यको अपने अंदर खपाकर ऊपर ले जाते हैं। जैसा कि **स्वामी रामतीर्थने** कहा है "जैसे दीपकका तेल बत्ती द्वारा ऊपर चढ़कर प्रकाशके रूपमें परिणित होता रहता है वैसे ही ब्रह्मचारीके अंदरका वीर्य सुषुम्ना नाड़ी द्वारा प्राण बनकर ऊपर चढ़ता हुआ ज्ञान दीप्ति में परिणित हो जाता है।"

इसी आधारपर ही ब्रह्मचारी अपने स्थूल शरीर (पृथ्वी) को अपने सूक्ष्म प्राण, मन और हृदय (अन्तरिक्ष) और अपनी बुद्धि, मस्तिष्क (धुलोक) को पूरी तरह धारण कर लेता है इसलिये सब विशाल स्थूल संसार (अंत-रिक्ष) और प्रकाशमान ज्ञानमय संसार (धुलोक) को भी धारण किये होता है।"

पू० महात्मा गाँधीने भी अपनी पुस्तक "अनीतिकी राह पर" में लिखा है-"मेरा महात्मापन कौड़ी कामका नहीं है क्योंकि वह राजनीतिक है और इसलिये थोड़े दिनों में वह उड़ जायेगा। वास्तवमें मूल्यवान वस्तु तो मेरा सत्य अहिंसा और ब्रह्मचर्य पालनका हठ ही है।.....यही मेरा सर्वस्व है।"

संसारके महान् दार्शनिक **टी० एल० बास्वानीने** कहा है-"ब्रह्मचर्यका मार्ग स्वर्गका मार्ग है। स्वर्गका राज्य ब्रह्मचारियोंके लिए है। उसके द्वारपर प्रदीप्त अक्षरोंमें लिखा है, जो शक्तिहीन हैं वह भीतर न आवें।"

महात्मा टालस्टायने कहा है-"हर एक मनुष्यको भरसक इस बातकी कोशिश करनी चाहिए कि वह विवाह न करे। लेकिन विवाह कर लेने पर उसे चाहिये कि अपनी स्त्रीके साथ भाई बहिन की तरह रहे।"

इस प्रकार योगत्वोपनिषदमें कहा है "यावद्बिन्दुः स्थिरो देहेतावत्कालभयंनुः" जब तक वीर्य स्थिर रहता है, तब तक मनुष्यको कालका भी भय नहीं रहता।

श्री अरविंदने कहा है–"रेतस वीर्यका जो तत्व रति करने के काममें लगता है वह तत्व जितेंद्रिय होने से प्राण, मन और शरीरकी शक्तियों को पोषण देनेवाला एक महत्वके दूसरे तत्व में बदल जाता है। इस तरह आर्यों का आदर्श रेतसका ओजसमें रूपांतर होनेके फलस्वरूप उसके लिए ऊर्ध्व गति करनेका आदर्श प्रमाण है।"

भीष्म पितामहने कहा है–"तीनो लोकके साम्राज्यका त्याग करना स्वर्ग का अधिकार छोड़ देना, इससे भी उत्तम कोई वस्तु हो उसको भी छोड़ देना परन्तु ब्रह्मचर्यका भंग न करे।"

भगवान शंकरने कहा है–"ब्रह्मचर्यके तपके सामने अन्य सब तप बिना पूंजीके हैं। जिसने वीर्यको वशमें कर लिया वह मनुष्य नहीं देवता है।"

छांदोग्योपनिषद्में लिखा है–"एक तरफ चारो वेदका उपदेश और दूसरी तरफ ब्रह्मचर्य। यदि दोनोको तौला जाय तो ब्रह्मचर्यका पलड़ा और वेदोंके उपदेशका पलड़ा बराबर रहता है।"

"जो इस संसारमें आजीवन ब्रह्मचारी रहता है उसको इस संसारमें किसी प्रकार का दुख नहीं होता।"

यही नहीं ब्रह्मचर्यमें वह शक्ति है कि मनचाहा फल प्राप्त किया जा सकता है जैसा कि धर्मशास्त्रके इस श्लोकसे प्रकट है:-

" ब्रह्मचर्येण कन्या, युवानं विन्दते पतिम्।
अनऽवान ब्रह्मचर्यण, अश्वोघासं जिगर्णिति ॥'

कन्या ब्रह्मचर्यसे ही जवान पतिको प्राप्त करती है, बैल, घोड़ा, ब्रह्म–चर्यसे ही घास खाना चाहता है, एवं भोक्तृत्व प्राप्त करता है।

इसका स्पष्ट अर्थ है कि ब्रह्मचर्य पालन करने पर कन्याके मुखपर ओज एवं कांति होगी जिसे देखकर युवक उसकी ओर आकर्षित होगा और उसे अपनी धर्मपत्नी बनानेकी वह स्वयं इच्छा प्रकट करेगा।

ब्रह्मचर्यके महत्वके संबंधमें छांग्दोयोपनिषदमें कहा गया है। "एकत-श्चतुरो वेदाः ब्रह्मचर्यं तथैकतः।

चारों वेद एक तरफ हैं और ब्रह्मचर्य एक तरफ है।
प्रसिद्ध जैन मुनि **माणिक्य सिंह जी** ने कहा है–"केवल हिंसाकी दृष्टि से भी स्त्री प्रसंग त्याग करनेका उपदेश करते हैं।" क्योंकि एक बारके मैथुनमें असंख्य शुक्राणुका नाश होता है और उनमें उत्पादन करनेकी शक्ति होती है अतः हिंसा से यह खाली नहीं है। जैन हितोपदेशमें कहते हैं "शुद्ध ब्रह्मचर्यकी रक्षा करने के लिये अग्निमें लाल किये हुये लोहेंको आलिंगन करना पड़े तो करना अच्छा है पर नर्क द्वार रूपी नित नारी सेवन करना अच्छा नहीं।"

पर इस विलासिताके युगमें लोग सबसे अधिक महत्व नारी-पुरुष संभोग को ही देते हैं और उसका फल भी बुरी तरह भुगत रहे हैं। अच्छा है इस उपदेशके पढ़नेके बाद लोग आँखें खोलें और चेत जाँय।

नारायण हेमचन्द्र जीने कहा है "शरीरका सत स्खलित हो जाता है जिसके द्वारा तन-मनके हानिके सिवा और क्या होता है?"

डा० लतीफ एम० ए० पी० एच० डी० ने लिखा है "एक मन साधारण खुराकसे तोला भर वीर्य होता है। इस वीर्यमें करोड़ों मानवी बीज होते हैं। एक वक्तके अयोग्य स्खलनसे करोड़ों मानवका जान संहार करते हैं। कितनी हिंसा, कितना व्यय! इतना व्यय और इतना संहार जो मनुष्य नित्य नियमित करता है उसकी कितनी अधोगति होती है। इसके समझने के लिए वृहस्पति इतनी बुद्धि चाहिए।"

योगदर्शनमें कहा है "ब्रह्मचर्य पालनसे वीर्य रक्षा होती है और उससे शारीरिक एवं उसी तरह मानसिक बल प्राप्त होता है।"

धनंवन्तरिने कहा है "जो शांति, कांति, स्मृति, ज्ञान, आरोग्य और उत्तम संतति चाहता है उसे इस संसारका सर्वोत्तम धर्म ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए।" पर आजके डाक्टर वैद्य धनोपार्जनके लिए नाना प्रकार के वाजीकरण औषधियोंके नामपर युवक–युवतियोंको अति संभोगके लिये प्रोत्साहित करते हैं और अपने आचार्य धनवंतरिकी शिक्षाकी धनके लोभमें आकर अवहेलना करते हैं।

भगवान विष्णुने कहा है "ब्रह्मचर्य तप यह मेरा साक्षात हृदय है।'

ऋग्वेदमें कहा है "ब्रह्मचर्य पालनके बिना मनुष्य पूर्ण आयु भोग नहीं सकता।"

इन्द्रने कहा है " ब्रह्मचर्यसे ही ब्रह्म तेजका संचय होता है और पूर्ण तपस्वी उसके ही बलसे तप सफल कर सकता है।"

कृष्णने कहा है "ब्रह्मचर्य और अहिंसा शारीरिक तप है।"

धर्म संग्रहमें कहा है " जिस प्रकार सूर्य प्रकाशसे अंधकार नाश होता है, उसी प्रकार ब्रह्मचर्यसे मनुष्यके सब पापों का नाश होता है।"

ब्रह्मचर्य द्वारा चतुर्मुखी विकास

इसके पूर्व वीर्यकी उत्पत्ति एवं उसकी मर्यादाके बारेमें बताया जा चुका है पर अब आपको यह भी जान लेना चाहिए कि इससे केवल एकांगी ही नहीं बल्कि चर्तुमुखी विकास होता है। कुछ लोगोंका कहना है कि सभी ब्रह्मचारी होजांय तो वंश कहाँसे चले पर यह या तो उनकी अज्ञानता है या वे ब्रह्मचर्यका अर्थ ही नहीं जानते अथवा जानबूझकर ही आँखमें धूल झोंकने अथवा अपनेको धोखा देनेका प्रयत्न करते हैं कि वीर्य रक्षासे हम किस सीमातक उन्नति एवं विकासकर सकते हैं:-

यजुर्वेदमें कहा है " वीर्य रक्षा करने से अकाल मृत्यु नहीं होती। जो मनुष्य शरीरमें अनुपम वीर्यका संग्रह करता है वह दीर्घ जीवी होता है।" यहाँ अकाल मृत्युका अर्थ मनुष्यकी पूर्ण आयु १०० वर्ष से पूर्व मरने का है।

स्वामी रामतीर्थने कहा है "दुनियांके विचारोंको फेरने वाला समर्थ विद्वान हरबर्ट स्पेन्सर और स्वीडनवर्ग अखंड ब्रह्मचारी था। दुनियाँका प्रायः सबसे बड़ा तत्वज्ञानी केण्ट भी ब्रह्मचर्यके प्रतापसे ही दीर्घायु हुआ था।"

अत्रि मुनिका कहना है 'ब्रह्मचर्यकी रक्षासे मनुष्यको सब लोकमें सुख देनेवालीवाली सिद्धियाँ मिलती हैं।"

मृत्यु व्याधि जरानाश पीयूषं परमौषधम्।
ब्रह्मचर्यं महयत्नं सत्यमेव वदाम्यहम्॥ -सुश्रुत

मृत्यु व्याधि यथा बुढ़ापाको नाश करने वाली अमृतके समान महौषधि ब्रह्मचर्य है यह मैंने सत्य कहा है।

ब्रह्मचारी ब्रह्मभ्राजद् बिर्भात
तस्मिन्देवा अधि विश्वे समोताः (अथर्व ११।५।२४)

ब्रह्मचर्य–व्रतको धारण करने वाला प्रकाशमान ब्रह्म (समष्टि–रूप ब्रह्म अथवा ज्ञान) को धारण करता है और उसमें समस्त देवता ओत–प्रोत होते हैं (अर्थात् वह समस्त दैवी शक्तियोंसे प्रकाश और प्रेरणाको प्राप्त कर सकता है।)

ब्रह्मचारी...श्रमेण लोकांस्तपसापिपर्त्ति। (अथर्व० ११।५।४)

ब्रह्मचारी तप और श्रमका जीवन व्यतीत करता हुआ समस्त राष्ट्रके उत्थानमें सहायक होता है।

आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते। (अथर्व० ११।५।१७)

आचार्य ब्रह्मचर्य द्वारा ही ब्रह्मचारियोंको अपने शिक्षण एवं निरीक्षण में लेनेकी योग्यता और क्षमताका संपादन करता है।

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति (अथर्व ११।५।१७)

ब्रह्मचर्यके तपसे ही राजा अपने राष्ट्रकी रक्षामें समर्थ होता है।

इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्। (अथर्व० ११।५।१९)

संयत जीवनसे रहनेवाला मनुष्य ब्रह्मचर्य द्वाराही अपनी इन्द्रियों को पुष्ट और कल्याणोन्मुख बनानेमें, उन्हें कल्याणकी ओर प्रवृत करनेमें, समर्थ होता है।

श्री गुरु गोविन्द सिंहने कहा है "इंद्रिय संयम करो, ब्रह्मचर्य पालो, बलवान और वीर्यवान बनो।" सिक्खोंने इसीका पालन करके मुगलों का छक्का छुड़ाया था। पर आज हम लोग तो प्रायः अपनेको तामसी वृत्ति की ओर तेजीसे ले जा रहे हैं। उन्हें अपने गुरुके बचनको याद करना चाहिये।

एकमेव व्रतं श्लाघ्यं ब्रह्मचर्यं जगत्त्रये।
यद्विशुद्धि समापन्नाः पूज्यन्ते पूजितैरपि॥ (ज्ञानार्णव पृष्ठ सं० १३३)

तीनों लोकोंमें ब्रह्मचर्य नामका व्रतही प्रशंसनीय है, क्योंकि विशुद्ध ब्रह्मचर्य ब्रतको पालने वाले पूज्य पुरुषों द्वाराभी पूजित होते हैं।

नाल्पसत्त्वैर्न निःशीलैर्न दीनैर्नाक्षनिर्जितैः।
स्वप्नेऽपि चरितुं शक्यं ब्रह्मचर्यमिदं नरैः॥ (ज्ञानार्णव पृ०सं०१३३)

अल्पशक्ति, शीलरहित, दीन और इन्द्रियों से जीते गये लोग इस ब्रह्म–

चर्य व्रतका स्वप्नमें भी पालन कर सकते हैं।

बुद्ध भगवानने कहा है "भोग और रोग साथी हैं और ब्रह्मचर्य आरोग्य का मूल है।"

हठयोग प्रदीपिकामें लिखा है " मनुष्य जहाँ तक उर्ध्वरेता रहता है वहाँ तक अकाल भय नहीं होता।"

वाग्भट्टने कहा है "संसारमें जितना सुख है वह आयुके अधीन है और आयु ब्रह्मचर्यके अधीन है।" जैसाकि भीष्म पितामहने सिद्ध कर दिखलाया है।

लोग दीर्घजीवी होनेके लिए अनेकों प्रयत्न करते हैं पर असफल होते हैं। वास्तवमें यदि वे केवल ब्रह्मचर्यको अपना लें तो इसके पीछे जो तमाम शक्ति एवं धन दौलतकी बरबादी होती है। वह बच जाय और वे दीर्घजीवनको प्राप्त हों। वीर्य रक्षाके विषयमें वाग्भट्ट जी लिखते हैं:—

इत्याचार समासेन ये प्राप्नोति समाचरन्।
आयु आरोग्य ऐश्वर्य: यश: लोकश्च शाश्वतान्॥

जो मनुष्य युक्तिपूर्वक वीर्यकी रक्षा करता है उसे आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, यश तथा शाश्वत् लोककी प्राप्ति होती है।

जो प्राणी ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करता है वह सदा रोग मुक्त रहता है। प्रसिद्ध जीवशास्त्री डा० क्राउन एम० डी० ने लिखा है–

"ब्रह्मचारी यह नहीं जानता कि व्याधि ग्रस्त दिन कैसा होता है। उसकी पाचन शक्ति सदा नियमित रहती है। उसके वृद्धावस्थामें भी बाल्यावस्था ऐसा आनन्द आता है।"

ब्रह्मचारी सदा यौवनका अनुभव करता है। उसकी नस–नसमें आशा उमंग एवं उत्साहकी लहर दौड़ती है जिसकी पुष्टि चरकने इस प्रकार की है "स्त्रीं संगसे दूर रहने वाले दीर्घायु होते हैं। शरीर हृष्ट पुष्ट और तेजस्वी बनता है और सत्वर (शीघ्र) वृद्धावस्था आती ही नहीं और वृद्ध होते हुये भी सदा जवानी का आनन्द भोगते हैं।"

डा० लेटशन एम० डी०ने कहा है "प्रजोत्पादक तत्व वीर्यमें जीवन शक्तिका आश्चर्यकारक समूह रहने से एवं उसकी रक्षासे शरीर क्षीण नहीं

होता। जब इस तत्वका शरीरमें शोषण होता है तब उसकी जीवनी शक्ति में वृद्धि होकर उसका स्वास्थ्य उन्नत होता है। आंखें तेजस्वी होती हैं, चाल स्थिति स्थापक वनता है. शरीर सदा जवान दिखाई देता है।"

यही नहीं वेदके इस कथनसे भी इस बातकी पुष्टि होती है कि ब्रह्मचर्यसे महान् पराक्रमी बना जा सकता है "जो अपना वीर्य नीचे नहीं जाने देता। शरीरमें शोषण करके ऊपर चढ़ाकर ऊर्ध्व रेता होता है वह देवता की तरह पराक्रमी होता है"

प्रो० कृष्णरावने कहा है "अचिंत्य और अद्भुत पराक्रम करने के लिए तमाम अनुपम और मानसिक शारीरिक शक्ति, प्रशंसनीय सद्गुणों और दीर्घायु केवल ब्रह्मचर्यके प्रतापसे ही प्राप्त कर सकते है।"

ब्रह्मचारी प्रत्येक क्षेत्रमें सफलता प्राप्त कर सकता है जैसाकि अभ्यानंदने कहा है "अगर आपको ब्रह्मचर्य रूपी शक्ति प्राप्ति हो जाय तो ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो आप अपने हाथमें ले सकते नहीं।"

प्रसिद्ध अमेरिकन प्राकृतिक-चिकित्सक डा० बेनीडिक्ट लुस्ट ने कहा है "जिस अंशमें जो मनुष्य ब्रह्मचर्यकी रक्षा विशेष करता हैं उसी अंश तक वह मनुष्य विशेष महत्व का कार्य कर सकता है।"

प्रो० एकसनने कहा है "ब्रह्मचारीकी बुद्धि कुशाग्र और विशद होती है, उसकी वाणी मोहक होती है, उसकी स्मरणशक्ति अच्छी होती है, उसका स्वभाव आनंदी और उत्साही होता है।"

स्वामी विद्यानन्दने कहा है "परोपकारकी वृत्ति जाग्रत होती है. ब्रह्मचर्य पालनेवाला परोपकारी वृत्तिवाला रह सकता है और परोपकार वृत्तिके बिना किसीको मोक्ष मिलता नहीं" यदि आप मोक्ष भी चाहते हों तो भी ब्रह्मचर्यका सहारा लिये बिना नहीं मिल सकता चाहे आप अपना सब कुछ इसकी प्राप्ति में लुटा दें।

श्री रामेश चक्रवर्तीने कहा है "संसार सागर तैरनेके लिए प्रथम सीढ़ी ब्रह्मचर्य है।"

समुद्र तरणे यदवत् उपायो नौ प्रकीर्तितः।
संसार तरणेतद्वत् ब्रह्मचर्यं प्रकीर्तितः ॥

जिस प्रकार समुद्रको पार करनेके लिए नौकाकी आवश्यकता होती है उसी प्रकार समुद्र रूपी संसारको पार करनेके लिए ब्रह्मचर्य नौका रूप है।

प्रसादस्य विनिर्माणे मूलभित्तिरि पेक्ष्यते ।
तथैव जीवनस्थानौ ब्रह्मचर्यमपेक्ष्यते ॥

जिस प्रकार किसी महलके बनवानेमें नींवकी अपेक्षा होती है उसी प्रकार जीवनके प्रारम्भमें ब्रह्मचर्यकी अपेक्षा होती है।

कई हजार साल पहले रचे गये आयुर्वेदके सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ चरकमें इस शरीररूपी इमारत के तीन खंभे कहे गये हैं–

आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य– 'त्रय उपस्तम्भा इत्याहारः, स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति।'

ब्रह्मचर्यके संबंधमें गलतियां करके भी मनुष्य अनेक रोगों का शिकार होता है। सुश्रुतमें कहा गया है—

आहारस्य परं धाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः ।
क्षयो ह्यस्य बहून् रोगान् मरणं वा नियच्छति ॥

–आहारके अंतिम रूप शुक्रकी (वीर्य) रक्षा प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिए। इसका क्षय करना बहुत रोगोंका कारण होता है, यहांतक कि मौत के पास पहुँचा देता है।

वीर्यको मनुष्यकी जीवनीशक्ति कहा है– शुक्रायुत्तं बलं पुंसां।'

इस शक्तिको हस्तमैथुन, अति भोगविलास अथवा भोगके स्मरण द्वारा नाशकर देनेसे मनुष्यके शरीरमें रोग-प्रतिरोधक शक्ति क्षीणहो जाती है।

ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः ।
चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ॥ ४६ ॥मनुस्मृति

स्त्रियोंका स्वाभाविक ऋतुकाल रजोदर्शन १६ अहोरात्र है, इसमें पहले चार दिन भी सम्मिलित हैं, जिन्हें सज्जन स्त्री समागमके लिये निषिद्ध ठहराते हैं।

तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या ।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥ ४७ ॥ मनुस्मृति

इन सोलह तिथियोंमें से प्रारंभकी चार ग्यारहवीं और तेरहवीं स्त्री समागमके लिए निषिद्ध और शेष दस उत्तम मानी गयी हैं।

निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्।
ब्रह्मचार्येव भवति यत्रतत्राश्रमे वसन् ॥ ५० ॥ मनुस्मृति

पूर्वोक्त निंद्य छः रात्रियों तथा आठ दूसरी रात्रियोंमें भी स्त्री भोगको त्यागने वाला पुरुष (गृहस्थ आदि) कुछ भी हो, ब्रह्मचारी ही कहाता है।

डा० गोल्ड एम० डी० ने लिखा है कि इससे आध्यात्मिक शक्ति मिलती है "शरीरमें वीर्यके संचय और पोषणसे मनुष्यकी दैवी शक्तिमें अद्भुत वृद्धि होती है।"

इससे स्मरण शक्ति प्रबल होती है जिसका ज्वलंत प्रमाण हमारे सामने विनोबा हैं। एकबार उन्हें मैंने पत्र लिखा था और तीन सालके बाद एक सज्जन उन्हें मेरा परिचय देने लगे तो उन्होंने कहा "तुम वही हो जो पवनारके पतेपर पत्र लिखे थे। तुम्हारी पुस्तक 'नवीन प्राकृतिक चिकित्सा' मैंने पढ़ ली हैं। मुझे पसंद आई।" इस बातकी पुष्टि करते हुए स्वामी विवेकानन्दने कहा है "मनुष्य यदि अच्छी तरह वीर्य रक्षा करे तो एक बार का पढ़ा हुआ या सुना हुआ, जीवनभर स्मरण रख सकता है।"

यही नहीं वह समस्त विद्याओंका पंडित भी हो सकता है "ब्रह्मचर्य पालनसे समस्त विद्यायें प्राप्त हो सकती हैं। मनुष्य चाहे तो ब्रह्मचर्यके बल से स्मृतिधर एवं श्रुतिधर हो सकता है।" स्वामी शिवानंद ने कहा है "अगर आप ब्रह्मचर्य पालेंगे तो आपमें अतुल बल आवेगा।"

धर्म-शास्त्रका कथन है कि विना पुत्रकी नारी स्वर्गको नहीं प्राप्त होती पर ब्रह्मचर्यसे वह भी संभव हो सकता है जैसाकि मनुस्मृतिके निम्न उद्धरण सेप्रकट है:-

मृते भर्तरी साध्वी, स्त्री ब्रह्मचर्येण लवान्वित:;
स्वर्ग गच्छत्या पुत्रापि यथाते ब्रह्मचारिण:"

पतिके मृत्युके बाद ब्रह्मचर्यमें लीन रहनेवाली बिना पुत्रकी स्त्री भी स्वर्गमें जाती है। लोग यह भी शंका उठाते हैं, कि ब्रह्मचारी रहने से जब पुत्र नहीं होगा तो उसे स्वर्ग नहीं मिलेगा और मरनेके बाद उसका दाह-

संस्कार कौन करेगा ? इसका समाधान मनुस्मृतिके पांचवें अध्यायके इस उद्धरणसे प्रकट होता है:-

"अनेकानि सहस्त्राणि, कुमार ब्रह्मचारीणाम्,
दिवं गतानि विप्राणाम कृत्वा कुलसंततिम्"

प्रजा पैदा न किये फिर भी ब्राह्मणों के हजारों कुमार स्वर्गमें गये अर्थात् आजन्म ब्रह्मचारी रहने से स्वर्गमें गये। पू० गांधीजीने कहा है "जो मनुष्य स्वप्नमें भी विषयी विचारोंसे मुक्त रहता है वह संसार द्वारा पूजनीय है। यह स्पष्ट है कि दूसरी इंद्रियोंका संयम करना उसके लिए बहुत आसान बात है।" "थोड़ीसी देरके मजेके लिए बड़ी मिहनतसे कमाई जीवन शक्तिकी निधिको पलभर में खो देते हैं।"

"विचारशील डाक्टरों को कहना पड़ा है कि यदि पर स्त्री गमन और वेश्या सहवासका दौर-दौर यों ही चलता रहा तो कोई भी दवा मनुष्य जातिकी रक्षा न कर सकेगी।"

ब्रह्मचर्य एक व्यापक शब्द है ! ब्रह्मचर्यका अर्थ है शक्तियों का संग्रह करना, उन्हें बिखरने न देना, उन्हें अपनी उन्नति में लगाना।" व्यक्ति को ही नहीं समाजको भी ब्रह्मचर्य की जरूरत है। चतुर्मुखी ब्रह्मचर्य-केवल शरीरका नहीं मनका, आत्माका, समाजका, देशका सबका ब्रह्मचर्य है" ब्रह्मचर्यका सच्चा अर्थ शक्ति, सहनशीलता, तत्परता, उत्साह, ओजस्विता एवं क्रियाशीलता है।

यही कारण है कि वर्तमान एलोपैथिक चिकित्सामें ब्रह्मचर्यको महत्व न देनेके कारण ही हजारों प्रकार की—नई नई औषधियोंके ईजाद होनेके बावजूद भी रोग, दवा एवं रोगी बढ़ते ही जा रहे हैं और उनकी चिकित्सा स्थायी सिद्ध न होकर कुछ दिनोंके लिये केवल दमनकारी और बादका प्रभाव घातक सिद्ध होती है।

वैवाहिक जीवनमें ब्रह्मचर्य

लोगोंकी आम धारणा है कि वैवाहिक जीवनमें कोई व्यक्ति कैसे ब्रह्मचारी रह सकता है ? मनुष्य इस जीवनमें भी सामान्य

ब्रह्मचारी रह सकता है। यों तो इस युगमें किसीसे प्रश्न किया जाय कि आप महीने में कितनी बार परस्पर संभोग करते हैं तो प्राय: यही उत्तर मिलेगा कि मेरे लिये संयम रख सकना कठिन है और नित्य संभोगके विना तृप्ति ही नहीं होती एवं वहुतोंका तो यह कहना है कि विना इस क्रिया संपादनके गहरी नींद ही नहीं आती पर वे भूल जाते हैं कि वह नींद नहीं बल्कि शरीरका ओज निकल जानेके बाद थकान जन्य तंद्रा आती है। आजके लोग नारी पुरुषको इसीका साधन मानकर चलते हैं. जबकि पू० गांधीजी ने कहा है"स्त्री या पुरुषको प्रजोत्पत्तिके अभिप्रायके सिवा विषयेन्द्रिय की तृप्ति करनेकी जरूरत नहीं, जैसे जीवन निभानेके सिवा दूसरे किसी भी कारणसे खाने की आवश्यकता नहीं।"

आयुर्वेदके प्रसिद्ध ग्रन्थ भावप्रकाशमें भी वर्णन है "गर्भाधान करवानेके लिए ऋतुकालमें अर्थात् स्त्री गर्भ धारण कर सके, ऐसी शारीरिक स्थिति हो तो उस समय पुरुष स्त्रीका संग करे उसके सिवा स्त्रीके पास न आये।"

धर्मशास्त्र, समाजशास्त्र और आरोग्यशास्त्रकी मर्यादा है कि–ऋतुकाल की १६ रात्रिमें से ८ रात्रिमें जो पसंद आये किसी अनुकूल रात्रिको गर्भाधानकी इच्छासे ही स्त्री प्रसंग करना चाहिये और गर्भ रहनेके पीछे तथा बच्चा होनेके बाद ५ वर्षतक ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिये।"

" रजोदर्शनके १६ दिनतक ऋतुकाल माना जाता है। जिसमें पहली रज:स्राव निंद्य, अपवित्र दूषित और रोगोत्पादक, चार रात्रि उष्ण तथा शरीरस्थ धातु को दूषित रखने वाला एवं ११ से १३वीं रात्रि बचाना चाहिये। शेष रात्रि ऋतुकालकी रात्रि जाननी चाहिए।"

मनचाही संतानके लिए रजोदर्शनके छठवें, आठवें दशवें, बारहवें, चौदहवें, सोलहवें रात्रिमें संयोग करने से लड़का और पाँचवें, सातवें नवें, ग्यारहवें, तेरहवें, तथा पन्द्रहवेंमें रति करने से लड़की होती है। इस सम्बन्धमें मनु स्मृति में कहा है।

युग्मा सु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्तवे स्त्रियम् ॥४८॥ ३॥

गणनाके अनुसार सम संख्याकी तिथियोंमें समागमका फल पुत्र और विषम संख्याकी रात्रियोंमें समागमका फल कन्या होता है। अतएव पुत्रकी चाहना से मनुष्य ऋतुकालमें सम संख्याकी तिथियोंमें स्त्री समागम करें।

पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः।
समेऽपुमान्पूं स्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः ॥४९॥

पुरुषका वीर्य अधिक हो तो पुत्र, स्त्रीका अधिक होनेपर कन्या और दोनोंका वरावर होनेपर नपुंसक अथवा दोनों ही उत्पन्न होते हैं वीर्यके दुर्बल अथवा अल्प होनेपर कोई संतान नहीं होती।

यदि संभोगके समय पुरुषकी सूर्य एवं स्त्रीकी चंद्र नाड़ी चले तो लड़का होना निश्चित है और इसी तरह इसका उलटा लड़कीके लिए जाननाचाहिए।

यह प्रसंगसे अलग अवश्य मालूम होगा पर इसलिए वर्णन करना आव-श्यक समझा गया कि रोजाना अभ्यास करनेके बदले केवल एकही दिन जब उसकी आवश्यकता समझी जाय करनी चाहिए।

ऋतुस्रावके समय वीज परिपक्व होकर गर्भाशयमें आता है और वहाँ ८ से १४ दिनतक रहकर वाहर निकल जाता है अतः इन सव वातों को ध्यान में रखते हुये ही संभोग करना चाहिए।

पर आज तो कितने लोग रजःस्रावके दौरान ही संभोग करते हैं और अनेक रोगोंके शिकार होते हैं। विशेषकर जननेन्द्रियमें जलन, गरमी आदि रोग होते हैं। आजके कामशास्त्रके पश्चिमी विद्वान इस कालके संयोगको उचित एवं लाभप्रद वताकर व्यभिचारको प्रोत्साहन देते हैं। मनुस्मृति के अनुसार—**रजसाभिप्लुतां नारीं नरस्य ह्युपगच्छतः।**

प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते ॥४१॥४॥

जो व्यक्ति रजस्वला स्त्रीसेभोग करता है उसकी बुद्धि तेज, वल, दृष्टि और आयु क्षीण होते हैं।

व्यभिचारमय जीवन और प्रेम—वहुतोंकी धारणा है कि अधिक रति करने से दांपत्य-प्रेम वढ़ता है पर यह कोरा भ्रम है। व्यभिचारमय जीवनसे कभी सच्चा प्रेम तो हो ही नहीं सकता क्योंकि प्रेम तो पापमय जीवनसे नहीं वल्कि सदा पवित्र एवं संयमी जीवन तथा उद्देश्यकी एकतासे ही हो सकता है।

असंयमी जीवन सदा एक दूसरेके प्रति घृणा एवं दुःख पैदा करता है और वह इतना असंयमी हो जाता है कि अपने पर काबू ही नहीं रख पाता और अंतमें दोनो परस्पर घृणाके पात्र बन जाते हैं।

विवाहके पहले जिस कुमार-कुमारीके चेहरेपर ओज एवं तेज झलकता है वही विवाहके बाद असंयमी एवं मर्यादा रहित जीवन व्यतीत करते हैं तो फूलकी तरह कुम्हलाये हुए कांति हीन नजर आते हैं एवं निर्वल, निस्तेज तथा रोगी बनकर वैद्य-डाक्टरोंके दरवाजे की खाक छानते हैं। अतः मनुस्मृतिके अनुसार—

चतुर्थमायुषो भागमुषित्वाद्यं गुरौ द्विजः ।
द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत् ॥ १ ॥ ४ ॥

(आजीविका गृहस्थाश्रममें होती है और वह ब्रह्मचर्य पूर्वक होता है इस परम्पराकी दृष्टिसे कहां–). आयुके प्रथम चौथाई भागको (अर्थात २५ वर्ष तक) गुरूके समीप बिताकर-ब्रह्मचर्य व्रत करनेके पश्चात्–आयुके द्वितीय चौथाई भागमें विवाहित हो, घरमें रहे।

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेतः ॥ २ ॥ ३ ॥

ब्रह्मचर्य व्रतको अखण्डित रहता हुआ वेदों (चार या तीन), दो वेदों अथवा एक वेदको पढ़लेने के पश्चात गृस्थाआश्रममें प्रवेश करें।

स्त्री अधिकांश चित्त विभ्रम, गर्भपात, प्रसव पीड़ा, असंतोष, सतत् पश्चाताप, वंध्यापन, दूधकी कमी एवं अनेक रोगोंका शिकार वन जाती हैं।

वैवाहिक जीवनमें कामसे बचनेके उपाय––आधुनिक युगमें गलत आहार-विहारके कारण कामका भूत अधिक सवार रहता है पर इससे मुक्ति के विना न तो वास्तविक सुखकी अनुभूति और न शांतिकी ही प्राप्ति होती है, इससे बचनेके लिए श्री किशोरलाल भाई ने लिखा है "सज्जनोंकी संगति स्वामी निष्कुला नंदकी सार सिद्धि, भक्तनिधि, हरिवल, गीता जैसी अच्छी पुस्तकों, भक्त चितामणिके कुछ अध्यायों, गांधीजीके आश्रम वासियोंके नाम लिखे पत्रों, मंगल प्रभात, आत्मकथा, स्मांइल्सके चरित्र, प्रभुजीवन, रक्त शुद्धिके लिए किये जाने वाले आसन, प्राणायाम, आज्ञाचक्र (तंत्र शास्त्रमें

बताये चक्रोंमें से एक) पर धारणा वगैरहका अभ्यास, नाम स्मरण, मिताहार आदिका इसमें जरूर बड़ा हाथ है।" (स्त्री० पु० म० पृ १६३)

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ (गीता, अ० २ श्लो० ६४)

रागद्वेष रहित, आत्मवश बनी हुई इंद्रियोंसे, विषयोंका उपभोग करनेवाला निष्ठावान पुरुष प्रसन्नता पाता है।

सामान्य ब्रह्मचर्य पालनके नियम— यों तो जिस प्रकार हम अपनेको दूषित वातावरणसे अलग रखकर संयमी जीवन बिता सकें उत्तम है फिर भी जीवनमें उसकी सहायताके लिए क्या-क्या करना चाहिए इसे भी जान लेना आवश्यक है :—

(१) जीवन सत्व वीर्यको कभी भी क्षणिक आनन्द एवं निरुद्देश्य नष्ट न करना।

(२) विलासिताके लिये नहीं बल्कि मर्यादान्तर्गत संतानोत्पत्तिके लिए ही संभोग करना।

(३) ऋतु कालमें भी यदि स्त्रीमें गर्भधारणकी क्षमता नहीं है तो संयोग न करें। ऋतु कालमें केवल एक बार प्रसंग करे शेष समयमें मन, वचन एवं कर्मसे ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करनेका प्रयत्न करें।

(४) गर्भावस्थामें संभोग करना बड़ा ही घातक है।

(५) संतानोत्पत्तिके ३ वर्ष बाद कमसे कम जब तक शिशु ५ वर्षका न हो जाय और स्त्री स्राव न हो, संभोग न करें।

सामान्य ब्रह्मचर्य नष्ट कैसे होता है— अब तक तो आपने ब्रह्मचर्य पालनके बारेमें जाना पर साथ ही यह भी जान लेना अनिवार्य है कि यह भंग कैसे होता है ताकि उन अवसरों से बचा जा सके :—

(१) गर्भाधान न हो सके ऐसी दशामें संभोग करनेसे। वास्तवमें इस समय करना तो केवल वासना एवं विलासिताकी तृप्ति है। जैसाकि अधिकांश पुरुष-स्त्री परस्पर वासना तृप्तिका साधन बनाकर ही उपयोग करते हैं यह वेश्यागमनसे किसी भी प्रकार कम नहीं है क्योंकि दोनोंमें काम-वासनाकी तृप्ति ही प्रधान उद्देश्य है।

(२) गर्भावस्थामें करने से। इस समय स्त्रीकी स्वभाविक इच्छा रति करने की नहीं होती और उस समयके संयोगका प्रभाव वच्चे माता–पिता इन तीनोंपर वहुत बुरा पड़ता है पर विशेषकर भ्रूणपर। यह हस्तमैथुनसे भी घातक है क्योंकि इसका प्रभाव एक पर नहीं तीनों पर पड़ता है। इसका अर्थ आप कभी यह न लगा लें कि संभोग करनेके बदले कामवासनाकी तृप्ति के लिए हस्तमैथुन करना शुरू कर दें। दोनों ही समानरूप से भयानक कु–परिणामदायी हैं।

इस समयके मैथुनसे कभी–कभी गर्भाशयसे रक्तस्राव होने लगता है जिससे गर्भस्राव एवं गर्भपातकी अधिक संभावना रहती है। बार–बार घर्षणसे स्त्रीकी योनि गर्म रहती है साथ ही अन्य कष्ट भी हो जाता है एवं वहां के अवयवमें गंदगी पैदा होनेसे जननेंद्रिय संबंधी अनेक रोगोंका जन्म होता है।

गर्भावस्थामें प्राय: स्त्रियोंको मिचली एवं अन्य उपद्रव खड़े हो जाते हैं। अन्य कारणों के साथ इसका प्रधान कारण उस कालमें संभोग ही है क्योंकि इससे स्त्रीके तमाम ज्ञानतंतु उत्तेजित हो जाते हैं।

इससे संतान व्यभिचारी, कुरूप, एवं बुद्धिहीन होती है जिससे उसका जीवन संकटमय हो जाता है। संयोगके समय भ्रूणके जिस भागपर दवाव पड़ता है वह दव जाता है और पर्याप्त विकास से वंचित रहता है क्योंकि उस समय वह बड़ा ही कोमल होता है।

(३) दूध पिलाती हुई माताके साथ भी संभोग करना ब्रह्मचर्यके लिए घातक है। कभी-कभी ऐसे समय आते हैं जवकि संभोग करनेसे रजोदर्शन भी हो जाता है जिसका प्रभाव दूधपर पड़ता है और उसमें कमी ही नहीं आती वल्कि वह विषाक्त भी हो जाता है। माताके आहारका सत्व ही तो दूध होता है पर संभोग होनेपर यह रस दूध न बनकर रजोस्राव द्वारा बाहर निकल जाता है एवं बच्चा भूखों रहता है अत: यह भी एक प्रकार की हिंसा हुई कि अप्रत्यक्ष रूपसे वच्चेके आहारको छीना गया और वच्चेके पूर्णकाल तक दूध पीनेके पहिले ही गर्भ धारण हो जाता है। यों तो शास्त्रोंमें कहा गया है "एक पुत्र होनेके वाद अखंड ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करना चाहिए।" पर इस युगमें इस सीमा तक जो पहुँच जांय वे धन्य हैं किंतु यदि वास्तवमें आपके

मनमें लगन है कि आपकी स्त्री गुलावकी तरह प्रफुल्लित सुन्दर मुखवाली स्वस्थ एवं प्रसन्न रहे, सुन्दर संतान भी हों एवं साथ ही आप भी स्वस्थ रहें तो धर्मशास्त्रके अनुसार बच्चे होनेके ३ वर्ष बादतक स्त्री संभोग नहीं करना चाहिए।

नैतिकता बनाम कृत्रिम साधन– संतति निरोधके लिए कृत्रिम साधनका जोरों से प्रचार हो रहा है एवं सरकारभी इस कार्यमें पूर्ण रूपसे शक्ति लगा रही है पर इससे भलेही संतान न हो किंतु व्यभिचार दिन दूना रात चौगुना बढ़ता ही जा रहा है। मनुष्य इन साधनोंको केवल अपने घरतक ही सीमित नहीं रखता बल्कि दूसरोंपर भी आजमाता है एवं संयमसे दूर और असंयमकी ओर तेजीसे बढ़ता जा रहा है। इससे अनेक प्रकारकी हानियां होती हैं। इस संबंधमें पू० महात्मा गांधीने लिखा है:–

"संतान वृद्धि रोकनेकी मर्यादाकी आवश्यकता है। इसमें दो राय तो हो ही नहीं सकती पर उसका जमाने से उत्तराधिकार में मिला हुआ एक मार्ग संयम–ब्रह्मचर्य ही है। यह एक रामवाण उपाय है।"

यही नहीं कि इससे हमारे अंदर की नैतिकताका उत्तरोत्तर ह्रास होता है वलिक हम व्यभिचार, अनीति एवं काम-वासना तृप्तिके कृत्रिम तथा हानिप्रद उपायोंकी ओर तेजीसे बढ़कर अपने अंदरकी ओज एवं कांतिको स्वाहा करते हैं जैसाकि पू० बापूने लिखा:–

"कृत्रिम साधन दुराचारको उत्तेजन देने जैसा है। इससे मनुष्यपर समाजका जो नियंत्रण है उसे तोड़ने में देरी नहीं लगती। इसके उपयोगसे नपुंसकता एवं निर्वीर्यता उत्पन्न होती है।" इस साधन द्वारा संतति निग्रह निश्चित भी नहीं कहा जा सकता।

पहिले ही बताया जा चुका है कि हमारी यह जनहितकारिणी सरकारभी पश्चिम वालोंकी नकल करते हुए संततिनिरोधके लिए कृत्रिम साधन पर बहुत जोर दे रही है एवं गली-गली इसकी दूकानें एवं अनेक स्थानोंमें इसके केंद्र खुले हुये हैं पर इस संबंधमें राष्ट्रपिता बापूने फिर लिखा है:–

"आज हमें गर्भ निरोधक साधनके उपयोगकी औरपशुवृत्तिको मर्यादित करनेके लिए और संपूर्ण ब्रह्मचर्य पालनके शिक्षाकी आवश्यकता है।"

कृत्रिम साधनसे स्त्रियोंको अनेक रोग जैसे प्रदर, वहांके नसोंमें कड़ापन, एवं कभी-कभी जख्म भी होनेका भय रहता है एवं यही रूप बढ़कर व्रण एवं नासूर तक हो सकता है। केवल शारीरिक क्षति ही नहीं बल्कि स्नायविक संस्थानपर भी आघात होता है।

यदि इत्तिफाकसे कृत्रिम साधन में जरा भी किसी प्रकारकी गंदगी रह गई तो उसकी छूतसे अनेक प्रकारके भयंकर रोग उपदंश एवं कैंसर तक भी हो सकते हैं और छोटे-मोटे रोग होना तो साधारण बात है।

जो महिलायें गर्भनिरोधक गोलियाँ खाती हैं उनके शरीरमे ये गोलियां विटामिन बी-६ (पैरीडाक्सीन) का क्षय करती है।

डा० पिनकस और राकका कहना है कि वोरसेस्टर फांण्डेसनमें गोली खाने वाली महिलाओंका परीक्षण किया गया (१) उनमें १२ प्रतिशतका स्वास्थ्य गिर रहा था। डा० एडवर्ड टेलर ने लाज एजित्समें गोली खाने वाली महिलाओंका परीक्षण किया और उनका कहना है कि इसमें अधिक प्रतिशत (२) नारियोंके स्वास्थ्यमें गिरावट है।

इसके अतिरिक्त मितली एवं उल्टी आने की शिकायत बराबर रहती है मासिकमें गड़बड़ी होती है और बहुतों को अधिक रक्तस्त्राव होता है। कुछ वजन बढ़ जाता है कुछ को सिरमें दर्द, कुछको स्तनमें बेचैनी, कुछ को सिरमें चक्कर।

१९५७ में वर्जीनिया विश्व विद्यालयके डा० कार्वेलिया हाचलिगेटी ने कहा था।' ये गर्भ निरोधक गोलियां नारीमें कैंसर उत्पन्न कर सकती है। जगह-जगह गांठे निकल आती है।

आत्म संयम आसान है— वर्तमान युगकी आम धारणा हो गई है कि आत्म संयम बड़ा कठिन है पर यह उनका कोरा भ्रम है। हां, वह यह कह सकते हैं कि हमने अपने जीवन स्तरको इतना गिरा दिया है कि उसमें उत्साह, उमंग, दृढ़ निश्चय एवं इच्छा शक्तिका सदा अभाव है यदि ये गुण हम अपने अंदर पैदा कर लें तो यह वहुतही सरल है जैसाकि पू० गांधीजी ने कहा है:—

"भोजन, उपचारके द्वारा बिना अधिक कठिनाईके आत्मसंयम किया जा सकता है। मैं ही नहीं, अन्य प्राकृतिक चिकित्सक भी कहते कि हैं पानी

मिट्टीके उपचारसे शरीर संकोचन होता है और सात्विक तथा मुख्यतः फलके आहारसे स्नायु मंडल शांत होता है विषय-वासना आसानीसे वशमें आ जाती है। नियमित प्राणायामसे भी यह फल प्राप्त होता है। ऐसा राज़योगी कहते है।" कृत्रिम साधनोंसे वीर्यका स्वाभाविक उपयोग न होनेपर वह निष्फल जाता है।

अनेकों व्यक्ति ऐसे मिलेंगे कि विना नारीकी इच्छाके भी संभोग कर वैठते हैं। इससे ब्रह्मचर्य नष्ट होता है एवं साथ ही अनेक प्रकारकी हानियाँ भी होती हैं। परस्पर प्रेम दूषित होता चला जाता है क्योंकि संभोगके बाद स्त्रीको वड़ी ही ग्लानि होती है कि वह पुरुषके अधीन है इसलिये ऐसा होता है और वास्तवमें बात भी ऐसी ही है कि पुरुष स्त्रीको कामवासनाकी तृप्ति का साधन बनाये रहता है पर सचमुच वह जीवनके प्रत्येक क्षेत्रकी स्वा–भाविक संगिनी है अत: अपनी एवं उसकी दोनोंकी उन्नतिके लिये भी उसकी इच्छाका सदा आदर करना चाहिए। विना उसकी इच्छाके संभोग करने से वह कमजोर हो जाती है क्योंकि अन्दरसे उत्साहके वदले उसमें निरुत्साहिता एवं अनिच्छा होती है और निरंतर इस प्रकारके कार्यसे स्त्री अकालके गाल में समा जाती है। इस सम्बन्धमें एक विद्वानने लिखा है "स्त्रीकी इच्छा न हो फिर भी मैथुन करनेसे हस्तमैथुनसे भी अधिक हानि होती है।"

डा० एम० डी० क्राउनने भी लिखा है 'हस्तमैथुन पाप है, वेश्यागमन पाप है, पर जो पति पत्नीकी इच्छा विना बलात्कार संभोग करता है वह सब पाप एक साथ करता है।"

"स्त्रियों में ९० प्रतिशत रोगोंका कारण उसकी इच्छा विरुद्ध पुरुषका स्त्री प्रसंग है।" इसी प्रकार स्त्रीको भी पुरुषकी इच्छा एवं स्वास्थ्यका भी ध्यान रखना आवश्यक है।

किस आयु में नष्ट होता है–२५ वर्षके पहिले पुरुष एवं १८ वर्षके पहिले स्त्री जब अपने वीर्य एवं रजको नष्ट करते हैं तो वे इस व्रतको भंग करते हैं क्योंकि उस समयतक रज-वीर्य कण परिपक्वावस्थामें नहीं होते हैं जिससे उनकी लहलहाती हुई जवानी मुर्झा जाती है, और भविष्यके लिए उसकी जीवन-नींव कमजोर हो जाती है और जरा भी जीवन-झकोरा पाकर

वह डगमगाने लगती है और डगमगाते–डगमगाते एक दिन समयके पूर्व ही धराशायी हो जाती है। उस समय उसकी अवस्था देखकर लोगोंको शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि इस प्रकार जीवन बितानेपर इस अध:पतनकी अवस्थाको प्राप्त होना अनिवार्य है।

विवाहका उद्देश्य

इस युगमें बहुत ही कम लोग ऐसे होंगे जो विवाह करनेके इच्छुक न हों। भले ही किन्हीं परिस्थितियोंके कारण वे सफल न हों पर उनके दिलमें विवाहकी आग जलती ही रहती है। वे जब देखते हैं कि उनके सम वयस्क मित्रका विवाह हो गया तो वह अन्दर ही अन्दर मन मसोसकर रह जाते हैं।

हां, यह तो मानना ही पड़ेगा कि उनका विवाहका उद्देश्य प्राय: शारीरिक सम्बन्ध, समयपर भोजन मिल जानेका एवं नारीके लिए भरण पोषणका सहारा पाना होता है। कुछ लोग सुन्दरसे सुन्दर नारीसे विवाह करना इसलिए पसन्द करते हैं कि वह अपने जीवनको अधिकसे अधिक विलासी बना सकें इसीलिये नारीकी योग्यताका कम किन्तु रूपका अधिक महत्व है।

सचमुच विवाह करनेके पूर्व यदि उसके वास्तविक उद्देश्यको अच्छी तरह समझ लिया जाय तो वह वैवाहिक जीवन विलासिताका साधन न होकर एक दूसरेके पूरकका काम देगा। अत: उसके निम्नांकित मौलिक उद्देश्यको समझने एवं अपनाने का प्रयत्न करें।

१–कामवश होनेकी स्थितिमेंसे निष्काम स्थितिमें या काम से स्वाधीन रहनेकी स्थितिमें कैसे जाया जाये, इस विचारमें से पैदा हुई स्त्री पुरुष योग की व्यवस्था ही विवाह है।

इसप्रकार का विवाह उच्चकोटिका होता है कि काममें से निकल कर निष्काम जीवनमें पहुँचकर देश एवं समाजकी सेवा कर सकें।

२–मनुष्यमें संभोगकी इच्छाके कारण विवाह करना यह दूसरा उद्देश्य है जैसा कि श्री किशोर लाल भाईने (स्त्री० पु० म० पृ० १२४)में लिखा है:–

"प्राणीमें संभोगकी इच्छा और क्रिया पैदा करने वाला बल कामका एक धर्म है, और प्रेमकी भावना या गुणके रूपमें बदलना कामका दूसरा धर्म है।" इस दृष्टिकोणको रखते हुये विवाह सुख शांतिदायक होगा।

३–विवाह मनुष्यको उसकी प्रेमकी भावनाको संकुचित दायरेमें फैलाने की शिक्षा देनेवाला होना चाहिये। अल्पमें से महानकी ओर ले जानेवाला साधनके रूपमें उसका विचार होना चाहिये। लग्नकी जिस प्रथामें ऐसा करनेकी ताकत हो वह शुद्ध दूसरी अशुद्ध या कम शुद्ध है।

४–इसलिए करना कि स्त्री और पुरुषके संभोगका कुदरती परिणाम प्रजा वृद्धि है।

५–जो प्रकृतिका हेतु सिद्ध करे वह हेतु है। अपनेमें (प्रकृतिमें) रही अलग-अलग तरहकी भौतिक एवं आध्यात्मिक शक्तिको प्रकट करने का। उन शक्तियों द्वारा नये प्रकारके भौतिक और आध्यात्मिक रूप सिद्ध करनेका, (यानी अपना क्रमशः विकास करनेका) इन विविध रूपोंके कोठारके तौर पर उन शक्तियोंका उपयोग करना।

आदर्श दंपतिके लिये कहा गया है कि वे जीवनमें किसी लक्ष्य को लेकर एक दूसरेको अपना पूरक समझकर विवाह करें और उसके बाद उस लक्ष्यकी प्राप्तिमें अपनेको लगा दें। जैसा कि सामाजिक कार्यकर्ताओंमें प्रायः देखा जाता है कि एक ही उद्देश्यके पथके दो पथिक जब विवाह करके लक्ष्य की प्राप्तिकी ओर अग्रसर होते हैं तो उनके जीवन एवं उद्देश्य की सफलतामें चार चांद लग जाता है। उदाहरणके लिए आर्यनायकम जी एवं आशाबहन का वैवाहिक जीवन था। इसी प्रकार अनेक विवाह उद्देश्यकी पूर्तिके लिये हुये हैं।

यों अविवाहित रहना भी बहुत ही अच्छा है पर यदि वे न रह सकें और उन्हें अपनी शक्तिका ठीक–ठीक अन्दाज लग जाय तो ऐसा समझकर सीधे विवाह कर लें और अपने बादकी पीढ़ीके युवकोंसे यह कहकर संतोष मानें कि देशके भविष्य निर्माणका काम तुम्हारे हाथमें है।

अविवाहित अवस्थाके साथ जैसे पवित्र जीवन अनिवार्य है वैसे कार्य के प्रति एक निष्ठा होना भी जरूरी है बहुतोंका अनुभव है कि अविवाहित

पुरुष अपने कार्यमें लगनके साथ जुटे ही रहेंगे, ऐसा विश्वास नहीं रखा जा सकता। एक तरहकी स्वच्छन्दता, लापरवाही या अस्थिरता अविवाहितोंका लक्षण बन जाती है क्योंकि युवावस्था में जवानी यानी जीवनका बसंत हमारी नसोंमें फूट जाता है। उस समय हमारे भीतरकी क्रियाशक्ति बाहर निकलनेके लिये तड़पती रहती है।

ऐसे समयमें यदि हम अविवाहित रहकर अपनी संयमित शक्तिको किसी उद्देश्यकी पूर्तिमें लगावें तो सफलता हमारे पैरों पर लोटेगी, हां पर चाहिये सही एवं सात्विक लगन कि हम उस कार्यमें इस प्रकार ओत-प्रोत हो जायें कि शादीकी याद ही न आये, जैसा कि इस युगमें विनोबा आदि और स्वतन्त्रता संग्राम के जमानेमें तो ऐसे हजारों मिलेंगे जिन्हें अपने लक्ष्यके सामने शादीकी याद ही नहीं आई।

विवाहकी उचित आयु–विवाह एक महत्वपूर्ण विषय है। इसमें दो साथियोंके मिलकर (योग) जीवनभर सुखी रहनेका रहस्य छिपा हुआ है। अतः शादीकी ठीक आयुमें दोनोंको सोच-समझकर साथी चुनना चाहिये।

बहुतसे हिन्दू घरोंमें अबभी 'अष्टवर्षाभवेदगौरी' की प्रथाके अनुसार मासिक स्रावके पहिले शादीकर लेते हैं पर यह चलन अविवेकपूर्ण है। इससे हजारों घर बर्बाद होते हैं और दांपत्य जीवन सुखमयके बदले कलहमय हो जाता है। इस छोटी उम्रमें शादी करनेके फलस्वरूप वह १४-१५ वर्ष की आयुमें गर्भ धारणकर लेती हैं। यह ऐसी अवस्था है जबकि वह एवं उसके अवयव बहुत कोमल होते हैं। अतः गर्भ धारण एवं प्रसवका भार पड़ते ही उसका स्वास्थ्य गिरने लगता है और बच्चा भी अस्वस्थ रहता है।

केवल बच्चेको जन्म दे देनेका ही जीवनमें महत्व नहीं है बल्कि उसके स्वास्थ्य एवं सार संभालकी सारी व्यवस्था जाननी चाहिये अतः जब कन्या इन बातोंको अच्छी तरह समझ जाय तो शादी करनी चाहिए।

शादी होनेके बाद गृहस्थीकी पूरी जिम्मेदारी आ जाती है। उस समय विद्याध्ययन अथवा नौकरी करनेका भी समय नहीं मिलता। हां, मिले भी तो उनके बच्चोंको पालनेके लिए दाइयां रखनी पड़ती हैं, जो ठीक-ठीक पालन पोषण नहीं कर सकतीं क्योंकि उन्हें बच्चोंसे नहीं अपने वेतनसे प्यार होता

है अतः युवक युवतियोंको विवाहके पहले यानी कमसे कम बीस वर्षकी आयु तक विद्याध्ययनमें लगे रहना चाहिये ताकि भविष्यका जीवन ठीकसे चला सकें।

विद्याध्ययन समाप्त करनेके बाद अपने एवं यदि माता-पिता वृद्ध हैं तो उनके भी भरण–पोषणका भार युवक–युवतियोंपर पड़ जाता है अतः जब तक वे इस योग्य न हो जांय विवाह नहीं करना चाहिये। पर आज तो अधिकांश शादियाँ ऐसी होती हैं कि जिनके भरण पोषणका भी भार माता पिता पर ही रहता है।

युवकोंको तो बिना इस योग्य हुये विवाह करना दोनों के लिए अभिशाप है पर मैं कन्याओंसे भी कहूँगा कि वह भी अपनेको जीवकोपार्जनके योग्य बनायें। वह इसलिए नहीं कि कमाई करनी है बल्कि समय आने पर कभी किसीके सामने इसके लिये हाथ न फैलाना पड़े। यो तो जीविका कमाने का कार्य पुरुषका और घर चलानेका कार्य स्त्रीका ही होना चाहिये।

पर इस जमानेमें तो कन्यायें भी केवल आर्थिक आधारके लिए विवाह करती हैं और इसीलिए समाजमें उनका उतना ऊँचा स्थान नहीं है जितना होना चाहिए अतः उन्हें कभी भी इस भावनासे शादी नहीं करनी चाहिए।

यों तो विवाहकी आयुके सम्बन्धमें लोगोंके अनेक मत हैं पर सामान्यतः लड़की १६-२० एवं लड़का २०-२५ वर्षका माना जाता है। इस संबंधमें स्वामी दयानन्दजी ने सत्यार्थ प्रकाशमें लिखा है:—

"कन्या को १६वे से २४वें वर्ष तक और वरको २५वें से ४८वें वर्ष तककी आयु विवाहका समय है।"

"१६ वर्षकी कन्या और २५ वर्षके वरका विवाह कनिष्ठ, १८-२० वर्ष कन्या और ३०–३५ एवं ४० वर्षके वरका विवाह मध्यम एवं २४ वर्ष की कन्या एवं ४८ वर्षके वरका विवाह उत्तम है।" पर इस विवाहके साथ यह भी शर्त है कि वे उस आयु तक पूर्ण ब्रह्मचर्य रहें तभी इसका लाभ हो सकता है वरना यह विवाह तो एक रस्म अदायगी ही होगी।

योग्यता—आजकल वरकी योग्यता केवल आर्थिक ढांचे से और कन्याकी योग्यता केवल सुन्दरता से मापी जाती है। यह दोनों विचार

समाजको कलंकित करनेवाले होते हैं। दोनोंकी नैतिक शिक्षा एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी योग्यता देखना आवश्यक है। प्राय: देखा जाता है कि मां–बाप धन केविचार से योग्यता एवं आयुके दृष्टिकोण से अनमेल विवाह कर देते हैं और जिसका फल कन्या एवं वर दोनोको जीवन भर भुगतना पड़ता है और देशमें विधवाओंकी संख्या बढ़ानेमें इसका बहुत बड़ा हाथ है।

धनोपार्जनके लिये आज समाजमें घोर संघर्ष चल रहा है किन्तु प्रकृति ने स्त्रीको उसके लिए बनाया ही नहीं है। प्रकृतिने पुरुषको चौड़े कन्धे और पुष्ट स्नायु इसलिए दिए हैं कि वह शारीरिक-मानसिक श्रम करे सर्दी गर्मीमें भटके और परिवारके भरण पोषणका भार उठावे। स्त्रीका पेडू और नितंब वाला प्रदेश अधिक चौड़ा होता है। जननेन्द्रिय सम्बन्धी सभी अवयव इसी भागमें हैं और संतानोत्पादनका भार उन्हींको उठाना पड़ता है। बालकको अपने पेटमें धारण करके उसके संगोपन एवं संवर्धनका काम प्रकृतिने स्त्री को ही सौंपा है। पुरुष नया–नया उत्पन्न करता है और स्त्रीं उसकी रक्षा करती है। यह कार्य विभाग केवल उत्पत्तिके ही क्षेत्रमें नहीं बल्कि गृहस्थीमें भी। अत: कभी भी स्त्रीसे धनोपार्जन करानेकी इच्छासे शादी नहीं करनी चाहिए वर्तमान विलासिताके समाजमें जो स्त्री पुरुष नौकरी करके धनो–पार्जनमें लगे रहते हैं उनका न तो दाम्पत्य जीवन ही सुखी होता और न संतान ही सुसंस्कृत एवं मेधावी बन पाती है क्योंकि ऐसे माता पिता उनकी पर्याप्त देखभाल नहीं कर पाते हैं और वे दोनों अपने-अपने कार्यसे थक जाते हैं जिसके फलस्वरूप उनमें भी मानसिक तनावके कारण परस्पर तनाव भी हो जाता है।

सुखी जीवनके लिए—यों तो सुखी दाम्पत्य जीवनके लिए अनेक बातें हैं पर मुख्यत: निम्नांकित हैं–

(१) दोनोमें स्वतन्त्र रूपसे अपने–अपने जीवनको उपयोगी बनानेकी लगभग एकसी शक्ति होनी चाहिए।

(२) इन दो शक्तियोंका समान भूमिकापर योग होना चाहिए और यह योग समन्वयात्मक (अनुकूल)होना चाहिए नहीं कि दिन-रात दोनोंका जीवन कलहमय बना रहे।

(३) दोनोंमें अपने जीवनको स्वतन्त्र रूपसे सफल और उज्जवल बनाने की क्षमता होनी चाहिए।

दोनोंके सामने जीवनमें आहार, विहार, निद्रा, मैथुन वगैरह व्यक्तिगत वासनाओं एवं वृत्तियोंसे परे कोई स्वतन्त्र ध्येय या रुचि होनी चाहिए ताकि दोनों उस उद्देश्यकी पूर्तिमें अपनी पूरी शक्ति लगाये रहें और उन्हें गलत कामोंको सोचनेके लिए समय ही न मिले।

विवाहके पहले—के संबंधमें श्री किशोर लाल भाईने लिखा है "बच्चोंमें यह संस्कार डालना भी उचित नहीं है कि गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना पतन है या शरमाने वाली चीज है। संभोग केवल कामाचार है। यह भावना गलत है। यह मानकर चलना ही उचित है कि सैकड़ों स्त्री और पुरुष समय आने पर कामवासनासे प्रेरित होंगे। इसलिए उनपर इस तरह संस्कार डालने चाहिये जिसे उन्हें धर्मसे विरुद्ध न जाने वाली कामकी दीक्षा मिले। शादीके पहिले किसी स्त्री या पुरुषके प्रति कामातुर भावसे देखना पाप है। इस दृष्टिसे किसीका स्पर्श करना भी पाप है।" (स्त्री पु० म० पृ०६७)

युवक–युवतियां और विवाह

आजकल विवाहकी अनेक प्रथा चल पड़ी है, जिनमें कुछ तो समाज का मस्तक झुका देनेवाली और कुछ रसातलके घाट उतारने वाली भी हैं। जब कोई युवक-युवती एक दूसरेके संपर्कमें आता है, चाहे विभिन्न जाति अथवा संस्कृतिका क्यों न हो, तो वे परस्पर विवाहकी बात मनमें सोचने लगता है। कभी तो आपसमें वे भाई–बहनके बहाने मिलते हैं और कभी स्कूल–कालेजके साथीके नाते। इस प्रकार उनका सोचना एवं कार्य बिल्कुल ही अनीतिकी राहपर ले जाने वाला होता है, जैसाकि किशोरलाल भाईने लिखा है :—

"भिन्न जातिवालोंसे परिचय होते ही घर संसार बसानेकी बात सोचना गलत है। कामातुर होकर पत्नी या पतिको खोजनेकी वृत्ति या किसी स्त्री या पुरुषपर पहिले कामासक्त होकर बादमें उससे शादी करनेका निश्चय

करनेकी प्रवृत्ति संस्कृति नहीं वल्कि विकृत्ति है।" (स्त्री० पु० म० पृ० ६७)

इसी प्रकार अनेकों शिक्षकोंके बारेमें सुना जाता है कि उन्होंने अपनी शिष्यासे विवाह कर लियाया किसीविद्यार्थीने अपने साथ पढ़नेवाली लड़कीसे और किसी लड़कीने अपने साथ पढ़नेवाले लड़केसे शादी कर ली, यद्यपि घर वाले राजी नहीं थे। वे वास्तवमें विवाह सम्पन्न न करके कामांध होकर अपने को रसातलकी ओर ले जाते हैं। जिसके सम्वन्धमें पू० गांधी जीने लिखा है:—

"मुझे यह तरीका ठीक नहीं लगता। आज ये दोनों शादी करनेके लिये उतावले है। इनकी दृष्टि मोहांधसे अंधी हुई मानी जायेगी।"

पर वास्तवमें अगर कोई शिक्षक विद्यार्थीके नाते अपने सम्पर्कमें आनेवाली लड़कीके साथ या कोई विद्यार्थी अपने साथ पढ़नेवाली लड़कीके साथ बाप-वेटी या भाई-वहनके अतिरिक्त अन्य कोई सम्बन्ध हो सकनेके विचारको अपने हृदयमें स्थान दे, तो वह समाजका द्रोह करता है, अपनेसे भिन्न जातिका अनादर करता है और जिस व्यक्तिके सम्बन्धमें ऐसा विचार रखता है, उसके और उसके सगे-सम्वन्धियोंके साथ विश्वासघात करता है।

विवाहका ढंग— आजकल उचित विवाह करनेके मार्गमें वहुत सी आर्थिक एव सामाजिक कठिनाइयां हैं पर यदि हम धैर्य पूर्वक उनका समाधान सोचें तो उसे दूर करनेमें सफलता प्राप्त कर सकते हैं। उन कठिनाइयोंके सम्बन्धमें किशोरलाल भाईने लिखा है :—

"एक है जाति वंधनका, और दूसरा है वर विक्रय, कन्या विक्रय, दहेज हुँडा और जाति भोजके नामपर कन्या या वर पक्षपर पड़नेवाले आर्थिक बोझका।"

यह तो आये दिन देखा जाता है कि लड़की अच्छीसे अच्छी होते हुये भी धनके अभावमें अच्छे वरसे न विवाहकर अनमेल वरसे विवाही जाती है क्योंकि एक ही जातिमें विवाह करनेपर दहेज प्रथा जोरोंपर है, पर यदि इस जाति बंधनको हटा दिया जाय तो दहेज प्रथाके समाप्त होनेके साथ ही समाजमें वहुत ही व्यापक विकासशील क्रांति होगी और फिर धीरे-धीरे एक दूसरेकी संस्कृति एवं आचार व्यावहारका आदर करना प्रारम्भ कर देंगे। वहुतसे घरोंमें कन्या एवं वर-विक्रीकी बात चलती है और फलस्वरूप लड़की

या लड़का अच्छे सुसंस्कृत वर एवं पत्नीको न पाकर रुपयेके बलपर वह खरीद लिया जाता है।

इसी प्रकार भोज भी होता है, जिसमें तीन चार बार खिलाया जाता है। बहुतसे तो इस प्रथाके पूरा करनेमें कर्जदार हो जाते हैं, जैसे कहावत है कि भारतीय तीन बातों "भये, बियाहे एवं मरे" से बरबाद होते हैं। यानी बच्चा पैंदा होनेपर व्यय, विवाहमें व्यय एवं मर जाने पर अंतिम संस्कारमें भी व्यय होता है और ऐसे अवसरोंपर अपनी तथाकथित शान-शौकत कायम रखनेके लिये लोग कर्ज लेकर भी मर्यादा रखते हैं।

लोग यदि कन्याको घर बुलाकर उसके साथ हंसी मजाक करके चाय दूध तैयार करवाकर एवं उसके परोसने आदि के तौर-तरीकेको देखकर शादी तय करते हैं किंतु यह बहुत ही वेहूदी बात है क्योंकि परीक्षाके नाम पर तो कन्यायें सहम ही जाती हैं और यदि किसी कारणवश उसे अयोग्य ठहराया गया तो फिर उनकी शादीमें वड़ी कठिनाई होती है।

प्रेम-विवाह--- आजकल प्रेम-विवाह। (Love Marriage) की प्रथा चल पड़ी है। कोई लड़का या लड़की एक दूसरेके संपर्कमें आया नहीं कि कुछ दिनके बाद ही शादीकी बाद शुरू हो जाती है पर वास्तवमें यह शादी नहीं मोह-पाश होता है और मोह रूपी अंधकार दूर होते ही परस्पर लड़ाई-झगड़े शुरू हो जाते हैं क्योंकि दोनोंने गुण नहीं मोहांध हो एवं रूप देखकर शादी की है और रज-वीर्यके क्षयके बाद रूपका ढलना स्वाभाविक ही है।

अतः शादी करते समय खूब सावधानी रखनी चाहिए। स्त्री पुरुषको प्रेमांध बनकर नहीं बल्कि बहुत सोच विचारकर शादीका निर्णय करना चाहिये। अपना इष्ट साधनेके लिये उसके अनुकूल जीवन साथी चुनना चाहिये। प्रेमके नामपर बिना सोचे समझे शादी करने वालोंको पछताना पड़ता है।

इसी प्रकार यदि विरुद्ध स्वभाव वाले स्त्री-पुरुष प्रेमके नामपर मोहसे धोखा खाकर शादी करें तो उसका नतीजा बुरा ही होगा। इसलिये शादी करते समय इष्ट मित्र एवं स्वजनोंसे भी सलाह लेना आवश्यक है। काम-

वासनाकी प्रेरणाके वादजो फल होता है उसके बारेमें गांधी जीने लिखा है :–

"यदि आपमें काम वासना जोरोसे पैदा हुई होगी,तो आपका प्रेम विवाह करनेका खयाल सिर्फ मोह लग्न बन जायेगा।" (स्त्री पु०म०पृ०१५)

धर्मके भाई–बहन–– आये दिन धर्मके भाई-बहनकी चर्चा सुनी जाती है पर इसमें वास्तविकता कहां तक रहती है यह भगवान ही जाने। जिनके बीच कोई नाता-रिश्ता नहीं होता ऐसे स्त्री पुरुषमें कभी-कभी एक दूससेके धर्मके भाई-बहनका रिश्ता बांधनेका रिवाज पुराने समयसे चला आता है और अनेकों इसे निभाते भी हैं।

आपने महाराज पोरस एवं सिकन्दरकी स्त्री रुखसानाकी कहानी पढ़ी होगी। रुखसानाने पोरसके हाथोंमें राखी बांधकर उसे अपना धर्मका भाई बनाया था और केवल इतनेके लिए ही पोरस अपना सब कुछ गवांकर (सिकन्दरको अपने कब्जेसे मुक्तकर) भी बहनके नातेको कायम रखा।

पर आजके तथा कथित भाई बहन ऐसे हैं कि परस्पर गहरा संबंध बढ़ानेके बाद आपसमें शादी करनेकी बात शुरू कर देते हैं किंतु धर्मके भाई बहनका विवाह हो या उनके बीच कभी गंदा या अपवित्र व्यवहार हो तो इसे सगे भाई बहनके बीचके गंदे व्यवहारसे भी ज्यादा घोर पतन माना जायेगा। इस सम्बन्धमें गांधीजी ने कहा है "वास्तवमें जिन दो में प्रेम हो वह हिम्मत करके विवाह कर लें पर धर्मके भाई,बहन बननेका ढोंग न रखें।"

स्त्री–पुरुष मिलन–– यों तो हम पहिले ही बता चुके हैं कि धर्म-शास्त्रोंका आदेश है कि स्त्री-पुरुष विशेषकर युवक-युवती (कुमार–कुमारी) को कभी भी एकांतमें नहीं मिलना चाहिए। यहां तक कहा गया है कि माँ, बहन या बेटीके साथ भी एकांतमें नहीं बैठना चाहिए। मनुस्मृतिमें इस प्रकार कहा गया है :—

मात्रा, स्वस्त्रा, दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिद्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥१८७॥

इन्द्रियां बड़ी बलवान होती हैं। उनको रोकना विद्वानके लिये भी कठिन है। इसलिए मनुष्यको चाहिये कि माँ, बहन और लड़कीके साथ भी एकांत सेवन न करे।

उपेत्य स्नातको विद्वान्नेक्षेन्नग्नां परस्त्रियम् ।
सरहस्यं च संवादं परस्त्रीषु विवर्जयेत् ॥

विद्वान स्नातकको चाहिए पास पहुंचकर अथवा विशेष लक्ष्य करके नंगी परस्त्रीको न देखें; पराई स्त्रियोंसे एकांतमें अथवा गुप्त बात-चीत न करें।

न हीदृशमनायुष्यं लोके किंचन विद्यते ।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥१३४॥

आयुको नष्ट करने वाली संसारमें ऐसी दूसरी कोई वस्तु नहीं है जैसे पराई स्त्रीका संसर्ग।

यही नहीं श्री किशोरलाल भाईने लिखा है "जवान स्त्री पुरुषके बीच खानगी और लम्बे पत्र व्यवहारका सम्बन्ध भी एकांत वासका मकसद पूरा करता है। (स्त्री० पु० म० पृ० ३८)

तत्सृष्ट सृष्टसृष्टेषु कोऽन्वखंडितधी: पुमान ।
ऋषिनारायणमृतयोषिन्मय्येह मायया ॥१॥ (भागवत)

"एक नारायण ऋषिको छोड़कर ब्रह्मा, देव, दानव, मनुष्य पशु, पक्षीमेंसे एक भी कोई ऐसा है जो सर्जन कार्यमें स्त्री रूपी मायासे खंडित न हुआ हो ? जो पुरुषको लागू होता है, वही स्त्रीको भी लागू होता है।"

कुछ युवक-युवती गर्व करते हैं कि नवजवान लड़कियों एवं लड़कोंसे मिलते-जुलते रहनेपर भी वे डिगे नहीं पर यह व्यर्थकी बात है, कितने डिगे हुये पाये गये।

बहुतसे ऐसे लोग भी पाये गये हैं कि जो अपने कार्य एवं त्यागके बल पर बहुत ही ख्याति प्राप्त किये पर वे एकांतमें स्त्रियोंके सम्पर्कमें आये तो यकायक इस प्रकार गिरे कि फिर समाजमें उबर नहीं सके।

हां, यदि स्त्री या पुरुषोंको परस्पर मिलनेका अवसर ही आये तो किसी तीसरेकी मौजूदगीमें मिलना ही चाहिए ताकि वे गलत कदम उठाते हुये भय खायें वरना यह नहीं कहा जा सकता कि मनुष्य अथवा स्त्री कब गिरेगी। कि० लाल भाईने लिखा है—

"जब-जब मुझे स्त्रियों और बढ़ती हुई उम्रकी लड़कियोंको पढ़ानेका

मौका आया है, तब-तब मैंने इस बातका ध्यान रखा है और आज भी रखता हूँ कि मेरी पत्नी मेरे पास मौजूद रहे या कई स्त्रियां साथमें हों और मैं ऐसी खुली जगहमें बैठकर पढ़ाऊं, जहां मुझे मालूम हुये बिना भी हर कोई आ सके।"

यदि आजके शिक्षक ऐसा ही आचरण कर लें तो किसी भी प्रकारका भय न रह जाये। पर आज तो पढ़ानेके लिये अलग कमरा होता है, जहां शिक्षक युवती शिष्याको पढ़ाते हैं और इसके अनेकों कुपरिणामोंसे हम आप सभी परिचित हैं। आज तो लड़के–लड़की की मित्रता एवं एक दूसरे से अलग मिलने का रिवाज तेजीसे बढ़ रहा है।

विश्वामित्र एवं दुष्यन्त ऐसा आचरण आज संसारमें आये दिन और जगह-जगह होता हुआ सुननेमें आता है और उसका नतीजा कुवांरी लड़कियों, विधवाओं, बच्चों और अनाथाश्रमोंको भोगना पड़ता हैं। इतना ही नहीं जब ऐसी लड़कियोंको समाज ठुकरा देता है तो वे नीचसे नीच वृत्ति यहां तक कि वेश्यावृत्तितक अपनानेको बाध्य हो जाती हैं। प्रायः सुना जाता है कि अमुक सड़कपर पड़ा हुआ नवजात शिशु मिला। और अमुक स्त्री गर्भपात करानेके अपराधमें पकड़ी गई। यह समाजका पतन नहीं तो और क्या है ?

विदेशोंमें अनेकों शादीके पहिले स्त्री पुरुषका सम्बन्ध स्थापित कर चुके होते हैं श्री किशोरलाल भाईने लिखा है :—

"वह यह कि पिछले २५ बरसोंकी बनिस्बत इन २५ बरसोंमें शादीसे पहिले युवक युवतियोंके बीच संभोगकी मात्रा बढ़ गई है, यह कहनेमें अतिशयोक्ति नहीं है कि लगभग एक तिहाई स्त्रियां शादीके पहिले संभोग कर चुकी होती हैं। यह आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयमें पढ़नेवाले युवक-युवतियोंके बारेमें कहा गया है।"

यही हवा अब हिंदुस्तानमें भी धीरे-धीरे फैल रही है औरउसका प्रधान कारण युवक-युवतियोंको स्वतन्त्रतापूर्वक परस्पर मिलनेकी छूट और विशेषकर युवावस्थाकी सहशिक्षा।

सहशिक्षा—आधुनिक युगमें सहशिक्षा बड़ी आयुमें प्रचलित है पर वास्तवमें यह ११–१२ वर्षकी अवस्थातक ही सीमित होनी चाहिए, जब तक

कि लड़की–लड़कोंके मनमें नई उमंग न आये वरना आगेकी सहशिक्षासे सदा नैतिक पतनका भय बना रहना है क्योंकि कामके वश होकर व्यक्ति अपनी लज्जाको त्याग देता है। इस सम्बन्धमें मनुस्मृतिमें आदेश है :—

अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपिवा पुनः ।
प्रमदा ह्युत्पथं नेतुं कामक्रोधवशानुगम् ॥१८६॥२१४

चाहे पुरुष विद्वान हो, चाहे मूर्ख, यदि वह काम और क्रोधके वशमें है तो स्त्रियोंके संसर्गसे वह अवश्य विगड़ जायगा।

इसी प्रकार फिर मनु महाराज कहते हैं कि साधारण स्त्रियोंसे ही नहीं यदि गुरु पत्नी भी युवा है तो उसके स्पर्शसे भी बचें—

कामं तु गुरुपत्नीनां युवतीनां युवाभवि !
विधिवद्वन्दनं कुर्यादसावह मितिब्रु वन् ॥१८८॥२१६

युवा पुरुषको चाहिये कि युवती गुरु पत्नीको भूमिपर झुककर नमस्कार करे, पैर न छुये।

इस बातकी पुष्टि योगीभर्तृहरिने इस श्लोकसे की है कि **"कामातुराणां, न भयं न लज्जा"** कामीमें भय एवं लज्जा नहीं रह जाती है।

हाँ, जब स्त्रियोंके या खुदके प्राण जानेका संकट उपस्थित हो जाय, तब स्त्रियोंको छूकर या उनसे बोलकर भी स्त्रियोंकी और अपनी रक्षा करनी चाहिये। श्री किशोर लाल भाईने लिखा है–

"सैकड़ों स्त्रियोंके लिये निर्भयतासे चलनेका मार्ग–तो यही है कि पर पुरुष चाहे जितना सच्चा, सादा प्रेमल शुद्ध और आदर्शवादी मालूम हो, तो भी उसके साथ एकान्तमें न रहा जाय, हंसी मजाक न किया जांय, विशेष प्रयोजनके विना उसका अंग न स्पर्श किया जाय न होने दिया जाय। मर्यादाको लांघकर उसका साथ न बरता जाय।" (स्त्री०पु० मं० पृ० ४४-४५)

केवल सहशिक्षामें ही स्पर्श होनेसे खतरा नहीं है बल्कि बिना प्रयोजन दूसरे पुरुषों अथवा स्त्रियोंसे स्पर्श करना भी मर्यादाके अन्तर्गत नहीं है जैसा कि किशोरलाल भाईने लिखा है–

"सहशिक्षामें सिर्फ लड़के लड़कियोंको एक साथ पढ़ानेकी ही समस्या नहीं है बल्कि शिक्षकों और शिष्याओं तथा शिक्षिका या गुरुपत्नी और शिष्यों

के सहवास और स्पर्शकी तथा स्त्री-पुरुषकी मित्रता और सहकार्यकी भी समस्यायें हैं।" (स्त्री० पु० म० पृ० ५७)

"एक अब्रह्मचर्यके दोष सहशिक्षाकी संस्थाओंमें होते हैं ऐसा नहीं है, केवल लड़की या लड़कियोंकी संस्थाओंमें भी वे होते हैं, और परिवार के बीच भी होते हैं।" (स्त्री० पु० म० पृ० ५८)

यही नहीं कि पुरुष स्त्रीका ही स्पर्श आपत्तिजनक है बल्कि स्त्री-स्त्री एवं पुरुष-पुरुषका भी अकारण स्पर्श उचित नहीं है जैसाकि श्री किशोरलाल भाईने लिखा है:–

"स्त्री पुरुष दोनोका शरीर एक पवित्र वस्तु है। उसे बिना कारण किसीके स्पर्शसे दूषित नहीं करना चाहिये। किसीको–यानी स्त्रीको पुरुषका या पुरुषको स्त्रीका ही नहीं, बल्कि स्त्रीको स्त्रीका या पुरुषको पुरुषका भी–बिना कारण स्पर्श नहीं करना चाहिए।" (स्त्री०पु०म०पृ०६४)

घृतकुम्भ समानारी तप्तङ्गारसमः पुमान।
तस्मात् घृतं च वह्नि–च नैकत्रस्थापयेद्व्रधः॥

घी भरे वर्तनको प्रज्वलित अग्निके पास रखकर देखे। जो स्वाभाविक परिणाम हो वह स्त्री और पुरुषोंके एक साथ रहने से कैसे रुकेगा।

ब्रह्मचर्य नष्ट करनेमें बाल-विवाहका भी किसी प्रकार कम हाथ नहीं है। समाजका इस प्रकार पतन हो चला है कि लड़का-लड़की कुछ समझ ही नहीं पाते तभी उनका पाणिग्रहण कर दिया जाता है और उसका ही फल हमारा यह चतुर्मुखी पतन है।

यहाँ बाल-विवाहका अर्थ आप यह न समझें कि केवल छोटे-छोटे बच्चोंसे ही इसका मतलब है बल्कि कमसे कम पुरुष २५ वर्षकी आयु और लड़कीके १६ वर्षकी आयुके पहिले विवाह होना बाल-विवाह है। इस संबंध में स्वामी रामतीर्थने कहा है–

"आधुनिक बाल विवाहके रूढ़िमें गतानुगतिक न्यायसे भारतवर्ष का समाज अंधा भीत बन अपने सुकोमल और आशावंत पुत्र-पुत्रियोंको जानबूझकर प्रथाकी वेदी पर स्वाहा करता है और जीवन धन रूपी ब्रह्मचर्य का संरक्षणका मूल्य न समझते हुये सिर्फ अपनी सांसारिक मर्यादा तृप्त करने

के लिये छोटी आयुमें ही बालक बालिकाओंकी शादी कर लेते हैं।"

चाहे जितनी जन्म पत्री मिल जाय, चाहे जितना ज्योतिषका ताला मिल जाये, चाहे जितना शुभ मुहूर्त निकालो, चाहे जितना स्तोत्र मंगल गाओ, चाहे जितना पवित्र संस्कार करो पर हिन्दुस्तानमें इस समय जितना बाल विवाह होता है वह सब ही असामयिक, अमांगलिक और अपवित्र है।"

यह कहते हुए माता-पिता एवं दादा-दादीको सुना जाता है कि अपनी ही जिंदगीमें अमुक बच्चेका विवाह देख लें, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो पर वास्तवमें वह बच्चेके शुभचिंतक नहीं शत्रु हैं, जैसा कि पू० गाँधी जीने कहा है:—

"मेरे हाथमें शासन हो अथवा मेरी कलममें पूरी ताकत हो तो मैं उसका उपयोग प्रत्येक बाल-विवाह रोकनेमें करूं। जो माता-पिता अपने लड़केका विवाह बचपनमें करते हैं वे उनके दुश्मन हैं और उसको निर्बल पराधीन बनाते हैं।"

बाल विवाहसे होनेवाली हानियाँ— स्त्रियोंका अधिकांश रोग तो बाल विवाहके ही कारण होता है, उस अवस्थामें योनिके तन्तु कोमल होनेके कारण जब वहाँ रगड़से जलन होती है तो वे टूटते हैं और फलस्वरूप प्रदर शुरू हो जाता है और कुछ वर्ष बाद गर्भाधानकी शक्ति भी नष्ट हो जाती है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि वहांकी कोमल श्लेष्मिक झिल्ली एवं तंतुके फट जानेसे रक्त निकलने लगता है जिससे वहां घाव होनेका भी भय रहता है।

प्रदरके बाद ही रक्ताभाव, कमरमें दर्द, पैरोंमें पीड़ा, सिरदर्द एवं क्षण-क्षणमें थकान होने लगती है जैसाकि डा० क्राउन एम० डी०ने लिखा है:—

"जो स्त्री २० वर्षकी आयुके पहिले विवाहित होती है उसका हर वर्ष ३ वर्षके बराबर होता है यानी विवाहके बादसे पहलेकी अपेक्षा तीन गुना अधिक गतिसे मृत्युकी ओर बढ़ती है।"

बाल-विवाह और संतान- कम आयु यानी अपरिपक्वावस्थामें संतान होनेसे मांका स्वास्थ्य खराब होकर उसकी प्राकृतिक कांति लवण्यता, एवं चमक-दमक विदा हो जाती है और बच्चा इतना कमजोर एवं अर्ध विकसित होता है कि उसका जीना मुश्किल होता है और यदि जीवित भी रहा तो जीतेजी

मृतवत हो जाता है। अधिक आयु (२५-४० वर्ष) में उत्पन्न संतान बड़ी ही कुशाग्र बुद्धिवाली, सतेज, सबल एवं होनहार होती है, जैसाकि डा० गोल्ड एम० डी० ने लिखा है:– "मां बापके २५ वर्षसे ऊपरकी आयुमें उत्तमसे उत्तम संतान पैदा होती है।"

बुढ़ापेमें विवाह–रुपयेके लोभमें पड़कर अथवा धनहीन होनेके कारण प्राय: लड़कियोंका विवाह बूढ़ेसे भी कर देते हैं, जिसका फल आजहमारे सामने हजारों विधवायें नजर आ रहीं हैं। श्री किशोरलाल भाईने लिखा है "बूढ़ेके साथ छोटी लड़कीका विवाह करनेका मतलव मुर्देके साथ विवाह करना है। ऐसा करके पुत्रीका पापी पिता बादमें पछताता है। "यही नहीं जब उस युवा स्त्रीके कामकी तृप्ति उस बुड्ढेसे नहीं हो पाती तो वह सामाजिक बंधन एवं मर्यादाको तोड़कर पर पुरुषका सहारा लेती है।"

किंतु यदि बुड्ढा किसी कारणवश किसी बुढ़ियासे विवाह करता है तो कोई हर्ज नहीं क्योंकि इससे न तो विधवाओंकी संख्या बढ़ेगी और न अनमेल विवाह ही कहा जायेगा बल्कि जीवनका ध्येय प्राय: काम तृप्ति नहीं बल्कि वे दोनों जीवनमें एक दूसरेके पूरक होकर काम करेंगे और उनके जीवन का ध्येय प्राय: काम तृप्ति नहीं बल्कि मित्रवत रहकर एक दोनों जीवनमें एक दूसरेके कार्यमें सहायक होना ही होता है।

युवक–युवतियोंका यौवन काल– इस युगमें लड़केका यौवनकाल १६-२० एवं लड़कियोंका १३-१४ वर्ष माना जाता है पर वास्तवमें यह तो कच्ची अवस्था है परिपक्वावस्थाके लिए लड़केकी आयु कमसे कम २५ और लड़कीकी १६-२० वर्ष माननी चाहिये जैसाकि डा० क्राउन एम० डी०ने भी कहा है–

"सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेसे मालूम होता है कि समशीतोष्ण प्रदेशमें स्त्री २४ वर्षकी आयु तक अच्छी तरहसे विकसित नहीं होती। लड़की १६ वर्षकी आयु तक वढ़े पर साथही २४ वर्षकी आयु तक ब्रह्मचर्य पालन करे तो उसका शरीर मजबूत, कांतिमय एवं रक्तसे भरा हुआ हो जाय।"

इसी प्रकार युवकको भी कमसे कम २५ वर्षकी आयु तक ब्रह्मचर्य पालन करनेपर ही उसमें नवजीवन उमंग एवं आशाका संचार होगा। भविष्य में भी संसारमें अनेक व्याधियोंसे मुक्त रहेगा, यदि वह संयमित एवं मर्यादित जीवन बिताता है।

ब्रह्मचारीकी श्रेणी

सामान्यत: २५ वर्षकी आयु तक विवाह न करने वालेको ही लोग ब्रह्मचारी कहने लगते हैं पर ब्रह्मचर्यका विवाहसे उतना संबंध नहीं है जितना कि व्यक्तिने किस हद तक अपने वीर्य बिंदुकी रक्षा कर सकता है। मनुष्य हर परिस्थितिमें रहता हुआ भी वीर्यकी रक्षा करता है। और जिस हद तक वह रक्षा करता है उसीके अनुसार ब्रह्मचारीकी श्रेणीभी बनाई गयी है।

नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की धर्मशास्त्रोंमें मुक्तकंठसे महिमा गाई गई है। अनेक जन्मोंके संचित शुभकर्मोंके फलस्वरूप इस प्रकारके उच्चकोटिका ब्रह्मचर्य पालनमें हजारोंमें कहीं एक समर्थ होता है। ऐसा व्यक्ति केवल शरीरसे नहीं बल्कि मन, वचन एवं कर्मसे भी ब्रह्मचारी होता है और उसका एक बूंद वीर्य भी नष्ट नहीं होता और शरीरके अंदर रमकर ओज एवं कांतिकी वृद्धि ब्रह्मचारी करता है और उन्हींको ऊर्ध्वरेता कहा जाता है। नैष्ठिक ब्रह्मचारी– शोकसे परे तेजस्वी, दीर्घायु और मृत्युको भी अपने इशारेपर नचानेवाला होता है। जैसाकि भीष्म पितामहका उदाहरण हमारे सामने है कि महीनों बाण शय्यापर पड़े हुए मनचाही मृत्यु पाई यद्यपि इस उदाहरणकी पुनरावृत्ति हुई है पर यहां इसका देना आवश्यक जान पड़ा।

इसी प्रकार लक्ष्मणने मेघनाद ऐसे बलवान योद्धाको मारा, हनुमानने लंका दहन किया और स्वामी दयानन्दजी धूप–छाँह एवं वर्षामें सदा एक कोपीन पहिने हुये शीतकालमें भी नंगे बदन विचरण करते थे। इस युगके महान क्रांतिकारी विचारक पू० विनोबाजी भी नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहे जाते हैं और उसीके बलपर शरीरका दुबला पतला ढाँचा लिये हुये भी उन्होंने संसार में क्रांतिकारी परिवर्तन लानेका बीड़ा उठाया और उन्हें सफलता भी मिली। दीपावलीके दिन १५ नवम्बर ८२ को स्वेच्छा मृत्यु वरण किया।

श्री नारायण स्वामीने कहाहै "जो पुरुष एकांतमें भी सुन्दर स्त्रीका समागम होनेपर भी विकार रहित एवं निश्चल रहता है वह उत्तम नैष्ठिक है।"

बापूने कहा है "जिस निर्विकार दशाका अनुभव मृत शरीरको स्पर्श करके

कर सकते हैं, उसीका अनुभव हम जब किसी सुन्दरीसे सुन्दरी युवतीका स्पर्श करके कर सकें, तभी हम ब्रह्मचारी हैं।"

"स्त्रीके स्पर्शके मौके ढूंढ़े विना अनायास ही स्त्रीका स्पर्श करनेका मौका आ पड़े तो ब्रह्मचारी उस स्पर्शसे भागेगा नहीं।" "विकारी वातावरणमें खुद तो निर्विकार रहे ही पर जो विकारके विकारको भी शाँत करदे वही सच्चा ब्रह्मचर्य है" स्त्री० पु० म० ७८

स्त्रीको नंगे देखकर जिसके मनमें विकलता न आये स्त्रीमें मन न लगावे वह मध्यम ब्रह्मचारी है। पर इसका अर्थ आप यह न समझें कि ब्रह्मचारी रहते हुये आप व्यवहारिक अनुभव प्राप्त करने लगें बल्कि जहां तक संभव हो ऐसे अवसरोंसे सदा दूर रहनेका प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि मनुने कहा है "अपनी कन्याके साथ भी एकांतमें नहीं रहना चाहिये" नैष्ठिक ब्रह्मचारीकी तुलना निर्विकारी होनेके कारण ईश्वरसे की गई है क्योंकि वह निर्विकारी पारब्रह्म परमात्मा कहा जाता है। इस सम्वन्धमें श्री रायचन्द्रने कहा है—

निरखीने नवयौवना, लेश न काम विकार।
गणे काष्ठनी पुतली, ते ईश्वर साकार॥

नवयुवतीको देखकर जरा भी काम विकार न हो और उसे काठकी पुतलीके समान समझे वह ईश्वरके समान है। और इसी आधार पर ही गांधीजीने सच्चे ब्रह्मचारीके लिये कहा है "जो ब्रह्मचर्य स्त्रीको देखते ही डर जाय, उसके स्पर्शसे सौ कोस दूर रहे, वह ब्रह्मचर्य नहीं। साधनामें उसकी जरूरत होती है लेकिन अगर वह साध्य वन जाय तो वह ब्रह्मचर्य नहीं। ब्रह्मचारीके लिये स्त्रीका, पुरुषका, पत्थरका, मिट्टी का स्पर्श एकसा होना चाहिये।" पर इसका अर्थ आप यह न समझ लें कि संयमके उस कोटि तक पहुँचे विना ही आप इस तरहके अभ्यासकी परीक्षा करने लगें। ब्रह्मचर्य पालनके नियम स्त्री पुरुषके लिये समान है।

नैष्ठिक ब्रह्मचारीके जीवनका लक्ष्य- अन्य लोग तो दुनियांकी अठखेलियोंमें अपना समय गंवाते हैं पर ब्रह्मचारी क्या करता है? वह अपने जीवनका कोई सुन्दर लक्ष्य निश्चित कर उसीमें रत रहता है जिससे उसका मस्तिष्क कभी भी उस लक्ष्यके बाहरकी बात न सोच सके। संसार प्रसिद्ध चित्रकार

माइकेल एजेंलोसे लोगोंने विवाह करनेको कहा तो उसने उत्तर दिया– "चित्रकला मेरी ऐसी सहचरी है कि कोई पत्नी इस तरह हो नहीं सकती।"

इसी प्रकार ब्रह्मचर्य पालनके लिये प्रत्येक युवक-युवतीको चाहिये कि वह भी अपने जीवनमें रुचिके अनुसार कोई रचनात्मक लक्ष्य बना ले, इसके विपरीत आजके युवक-युवती तो अपनी जीवन सहचरी सिनेमा आदिको बनाये हुये हैं और इसका स्वास्थ्य एवं चरित्रपर कितना प्रभाव पड़ता है यह समाजकी गिरती हुई अवस्थाको देखकर आंका जा सकता हैं।

ब्रह्मचर्यके प्रति भ्रम– आजके तथाकथित कामशास्त्रके पश्चिमी विद्वानोंका मत है कि शरीरका वीर्य बाहर न निकलनेपर उसकी गरमीसे उन्माद, कोढ़, एवं अन्य रोग पैदा होते हैं। अतः विषय वासनाका भी तृप्त करना आवश्यक है पर ये भ्रम फैलानेवाले भूल जाते हैं कि वीर्य गरम नहीं शीतल होता है और किसी भी रूपमें चाहे वह गर्भाधानके लिये ही क्यों न खर्च हो एवं तथाकथित सुखके लिये ही क्यों न हो हर हालतमें हानिकर फल होता है। जैसाकि निम्न उदाहरणसे प्रकट है:–

ईरानके एक प्रसिद्ध चिकित्सक (हकीम) ने ५० वर्षकी आयु तक ब्रह्मचारी रहनेके बाद विवाह किया और एक पुत्र हुआ। उसकी स्त्री कामासक्त होकर अपने लड़के को सिखाकर बापके पास भेजा और कहलाया "मेरे एक भाई और हो तो कितना अच्छा हो?" चिकित्सकने उत्तर दिया "तुमको उत्पन्न करनेमें मेरी आधी बुद्धि एवं बलका नाश हुआ तो अब तुम्हारा भाई पैदा करनेमें क्या पायमाली (बरबादी) होगी वह अगर तुम समझते होते तो ऐसी मांग न करते।"

हमारे अंदरसे वीर्य न निकलनेसे नहीं बल्कि विजातीय द्रव्य विष न निकलनेसे रोग उत्पन्न होता है। हमारे शरीरके अंदर दो प्रकारके तत्व पाये जाते हैं:– (१) शरीर वृद्धि, विकास एवं रचनाके लिए आवश्यक है, जैसे वीर्य, रक्त, मज्जा एवं स्त्रीका रज और इन तत्वोंमेंसे किसी एकके नष्ट होनेपर क्षति होना स्वाभाविक है। (२) जिसके बाहर न निकलनेसे हानि होती है जैसे मल, मूत्र एवं पसीना आदि।

निष्कासन क्रियाका संचालन करनेके लिये प्रकृतिने फेफड़ा, गुर्दा, त्वचा

एवं आंतको बनाया है और किस अंगसे कौन तत्व कितनी मात्रामें निकलता है यह नीचेकी तालिकासे ज्ञात होगा। यह तालिका ग्राम में दी गई है:—

मल मार्ग	पानी	विभिन्न तत्व	नत्रजन	कार्बन
फेफड़ा	३२०	७७०	०	२१०
गुर्दा	१५००	६५	१६	१०
त्वचा	६५०	४५	६	६
पैखाना	१३०	५०	२	३०
जोड़	२६००	९३०	२४	२५६

अतः यह स्मरण रहे कि हमारा आहार ऐसा ही हो कि जिससे उपरोक्त तत्व अधिक मात्रामें उत्पन्न न हों वरना उनका निष्कासन न होने पर विजातीय द्रव्यके रूपमें शरीरमें रह जाने पर उत्तेजना पैदा होना स्वाभाविक है। ब्रह्मचर्य पालनके लिये डा० लीडस्टन एम० डी०ने कहा है, "आजीवन अथवा अति दीर्घकाल तक ब्रह्मचर्य पालनसे प्रजोत्पत्ति अवयवको कोई भी किसी प्रकारकी हानिके बिना उपयोग रहित रख सकते हैं, जिस प्रकार आहार, निद्रा एवं मल त्याग स्वास्थ्यके लिए आवश्यक है उसी तरह वीर्यस्राव कभी भी आवश्यक नहीं है।"

आप अपनी वुद्धि बलके लिए जिस सरस्वतीकी आराधना करते हैं, वह कौन हैं? ब्रह्मचारिणी ही तो! इसी प्रकार भीष्म शंकराचार्य, दयानन्द, विवेकानन्द एवं राममूर्ति आदिका ज्वलंत प्रमाण आपके सामने है कि जिनकी कृतियोंको सुनकर आप आश्चर्य चकित हो जाते हैं पर यह सब उस ब्रह्मचर्यका ही तो चमत्कार एवं प्रताप है, जो अन्यमें नहीं।

विवाहित नैष्ठिक ब्रह्मचारी—वे, जो विवाहित जीवन बिताते हुये भी पत्नीको साथ रखते हुये नैष्ठिक ब्रह्मचारी रह सके, धन्य हैं क्योंकि उनका जीवन सदा तलवारकी धारपर है पर ऐसे उदाहरणकी भी भारतवर्षमें कमी नहीं है। स्वामी रामकृष्णकी पत्नी शारदा देवी दक्षिणेश्वरमें आकर स्वामीजीके साथ रहती थीं पर दोनों आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहे। स्वामीजी जब प्रथम रात्रि अपनी पत्नीसे मिले तो उन्होंने उनको माँ कहकर पुकारा फिर उसी दिनसे दोनोंने आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रतका पालन किया।

विजया राजा और रानीमें राजाने यह प्रण किया था कि कृष्ण पक्षमें वह स्त्री संभोग नहीं करेगा और रानीने शुक्ल पक्षमें न करनेका प्रण किया था। जब दोनोंकी पहिली मिलन हुई तो एक दूसरेके प्रणसे परिचित हुए, फिर तो दोनों ने आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रतका पालन किया।

उपरोक्त उदाहरणोंसे स्पष्ट है कि विवाहित होते हुए भी ब्रह्मचारी रहना कठिन तो अवश्य है पर असम्भव नहीं।

ब्रह्मचर्य रक्षाके सामान्य नियम

रज वीर्यकी उत्पत्ति एवं महत्वको जान लेनेके बाद उसकी रक्षाके साधन एवं उपाय भी जान लेना आवश्यक है ताकि पूर्ण रूपसे ब्रह्मचर्य पालन करनेमें सरलता एवं सफलता मिल सके।

जो समाज, राष्ट्र अथवा व्यक्ति अपने ब्रह्मचर्यको नष्ट करता है वह कभी भी कर्तव्य परायण, ईमानदार एवं सुखी नहीं रह सकता। आज देशका नैतिक पतन इतना क्यों होता जा रहा है? इसका एकमात्र कारण है कि पुरुषोंका विवाहसे पहले स्त्री मात्रको छूने का और विवाह के बाद पराई स्त्री को न छूनेका आग्रह बहुत मंद होता जा रहा है।

लोगों की धारणा है कि उच्छृंखल पुरुषोंको सदाचारी नहीं बनाया जा सकता पर आप विश्वास रखें कि यदि प्रजाके सदाचारी भागका मत बलवान हो, तो इतना तो हो ही सकता है कि वे अपनी अनीतिको अमल में न ला सकें और अगर लावें तो वेश्याओंकी तरह वे भी सदाचारी लोगोंका आदर न पा सकें, अपने समाजमें सभ्य पुरुषोंकी तरह किसीसे न मिल सकें पर आज देखा यह जाता है कि किसी पुरुषका चाल-चलन हमें अच्छा नहीं लगता फिर भी वह समाजका नेता बना हुआ है पर यदि प्रजा सदाचारी बन जाय तो वह कभी भी नेता बननेकी हिमाकत न करेंगे। जैसा कि श्री किशोरीलाल भाईने लिखा है।

"यह बात समझनेकी जरूरत है कि प्रजाका गृहस्थ जीवन जितना पवित्र होगा, उससे ज्यादा पवित्र ब्रह्मचारी कोई समाज निर्माण नहीं कर

सकेगा। जिस प्रजाका गृहस्थ जीवन अपवित्र होगा-पतिव्रत और पत्नीव्रत का आदर्श शिथिल होगा-उस प्रजामें वहुतसे शुद्ध ब्रह्मचारी कभी नहीं हो सकते।"　　स्त्री० पु० म० ५८

आज तो ऐसे अनेक मिथ्याचारी मिलते हैं कि जो मनसे तो अशुद्ध पर तनसे जबर्दस्ती संयम किए रहते हैं, जैसा कि गीतासे प्रकट है।

"कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य–आस्ते मनसा स्मरन्
इन्द्रियार्थान्विमूढ़ात्मा मिथ्याचारःस उच्यते। (अ०३श्लो०८)

कर्मेंद्रियोंका संयम करके जो मूढ़ पुरुष मनमें विषयोंका स्मरण किया करता है, वह मिथ्याचारी कहा जाता है।

आपने इतिहासमें पढ़ा होगा कि फ्रांसवाले कभी कितने शक्तिशाली एवं पराक्रमी थे पर विलासितामें फंसते ही युद्धमें घुटने टेक दिये। औरोंको जाने दीजिए महान पराक्रमी पृथ्वीराज जब संयोगिताके चक्करमें पड़ा तो उसका तेजबल जाता रहा।

वीर्य रक्षाकी महिमा आजकी नहीं प्राचीन है, और हमारे ऋषि–मुनियोंने इसके पालनके अनूठे एवं अचूक नियम बनाये हैं, जिसपर चलकर हम निश्चय ही ब्रह्मचर्यकी रक्षा कर सकते हैं। उपनयन (यज्ञोपवीत) संस्कारके समय बालकसे कहा जाता है:-

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्य भाषणम्।
संकल्पोऽध्यव याम्यश्च क्रिया निर्वृत्तिरेव च॥
एतन्मैथुनष्टांग प्रवदन्ति मनीषिणः।
विपरीतं ब्रह्मचर्य मेतदेवाष्ट लक्षणम्॥

हे बालक! उमंग कालमें से गुजरते हुए आठ प्रकारके मैथुन, ध्यान, कथा, स्पर्श, क्रीड़ा, दर्शन, आलिंगन, एकांतवास और समागममें से किसी प्रकारका शिकार न बनना।

बच्चोंको मनमाना छोड़ देना भी महान् पाप है। आपने यदि संतानोत्पत्ति की है। तो संतानके चरित्रका हर क्षण आपको ध्यान रखना आवश्यक है। यदि उनके जीवनके प्रत्येक गति-विधिपर प्रेममय नियंत्रित न रखा गया तो उसका घृणित कार्योंका सीख जाना स्वाभाविक एवं सरल है।

मनुष्यको कभी भी बेकार नहीं रहना चाहिए क्योंकि उस समय उसके मस्तिष्कमें तरह-तरहकी भावनायें उठती हैं, जैसा कि कहावत है "Empty mind is the devil's work shop" खाली दिमाग शैतान के काम का घर है और शैतानका जो काम है वह तो आप जानते ही हैं कि अच्छाईसे बुराईकी ओर ले जाना, अतः बच्चोंको सदा किसी न किसी सद् कार्यमें लगाये रखना चाहिए क्योंकि बेकारीमें ही वे कुमार्गकी ओर प्रवृत्त होते हैं। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए ही ऋषियोंने कहा है "कर्मंकुरु" काम करो खाली मत रहो। अपनी शक्तियोंका प्रतिक्षण संचय, सदुपयोग तथा सद्व्यय करते रहो।

केवल मैथुनसे ही अपने वीर्यकी रक्षा नहीं करनी है बल्कि उसके नाशके अनेक कारण हैं जिनका वर्णन इस प्रकार है:-

रूप—जिस प्रकार सद्विचारोंको जाग्रत करनेके लिए आंखोंका बहुत बड़ा हाथ है उसी प्रकार कुविचारोंके लिए भी। आजकलका, विशेषकर शहरोंका विलासी एवं अप्राकृतिक जीवन तथा वातावरण ही बालक बालि-काओंके लिए गिरावटका कारण है। वे इस वातावरणमें रहते हुये अपनेको गिरनेसे बचा नहीं सकते क्योंकि उनके चारों ओर नाटक, सिनेमा और विभिन्न प्रकारकी शृंगार आदि विषधर सर्पकी भांति उन्हें डसनेके लिए मुंह बाए हुए हैं। यूनानके महान दार्शनिक प्लेटोका कहना है:-

"नाटकों द्वारा मनुष्यपर कृत्रिम वस्तुओंका प्रभाव वास्तविक वस्तुओं की अपेक्षा अधिक होने लगता है।"

अमेरिकाके प्रसिद्ध चिकित्सक डा० जे० एच० केलागने लिखा है:-

"आत्म क्षय, रात्रि जागरण, मध्य रात्रि भोजन, विलासी एवं अनु-चित पोशाक तथा···इन दोषोंके अलावा यह भी दिखाया जा सकता है कि नाचनेसे मनोभाव उत्तेजित हो जाते हैं और कुवासनायें जाग उठती हैं, जिनके कारण मनुष्य कुकर्मों में प्रवृत हो जाता है। ऐसे घृणित कृत्य आचार्य शास्त्रको धक्का पहुँचानेवाले तथा व्यक्तिके शारीरिक-मानसिक उन्नतिके बाधक हैं।"

आज सांस्कृतिक नृत्यका उतना महत्व नहीं है जितना कि हल्के

नाचोंका जैसाकि नाटक एवं सिनेमामें तथा शराब पीकर होटलोंमें करते हैं और इसीके आधारपर नाचघर (Dancing club) बढ़ते चले जा रहे हैं। जिस होटलमें शराब, मांस एवं नाच न हो उसका वर्तमान युगमें कोई महत्व ही नहीं।

बार-बार दर्पण देखनेसे भी मनोभाव दूषित होना स्वाभाविक है। आजके युवक-युवती ही नहीं बल्कि अधिक आयुवाले भी दिनमें पचीसों बार जब ड्रांइंग रूमसे गुजरे शीशा देखते हैं और श्रृंगारमें कहीं कोई अभाव रहा तो उसे क्रीम, पाउडर, लिपिस्टिक एवं लालीसे पूरा करनेका प्रयत्न करते हैं पर उसमें स्थायित्व कहां ? स्थायित्व तो हमारे स्वास्थ्यपर ही निर्भर करता है।

इस संबंधमें गांधीजीने भी कहा है "यदि आंखें पापकी ओर अग्रसर हों तो उन्हें बंद कर लेनी चाहिए। आंखें नीची करके चलना अच्छी आदत है इससे बंद कर लेनी चाहिये। उन्हें इधर-उधर घूमनेका मौका नहीं मिलता।"

एक बार एक लडकीने बापूको पत्र लिखा "जब मैं कालेजमें रहती हूँ एवं वहांसे निकलती हूँ तो लड़के (विद्यार्थी) मुझपर कुदृष्टि डालते हुए प्रतीत होते हैं।

बापूने उस लड़कीसे पत्र लिखकर पूछा "तुम कैसा कपड़ा पहिनती हो और कृत्रिम साधनों द्वारा श्रृंगार करती हो ?"

लड़कीने उत्तर दिया "मैं अपने विचारसे बढ़ियासे बढ़िया कपड़ा पहिन एवं क्रीम, पाउडर एवं लाली आदिसे श्रृंगार करके जाती हूँ।"

गाँधीजीने लिखा "तुम सादा कपड़ा पहिनकर बिना किसी प्रकार की सजावट किये हुए कालेज जाओ। फिर देखो तुम पर कोई भी बुरी दृष्टि नहीं डालेगा।"

इसके बाद वह नित्य सादे कपड़ोंमें बिना किसी कृत्रिम श्रृंगारके जाने लगी और बापूको लिखा कि अब वही लड़के मुझे कुदृष्टिके बदले आदर की दृष्टिसे देखते हैं और कभी कभी उन लोगोंमें परस्पर बात करते सुनती हूँ "इसमें कितनी सादगी आ गई, किस महात्माका जादू इस पर काम कर गया।"

इन बुरी चीजोंसे बचने एवं शिक्षाके लिये ही बापू तीन बंदर गुरु रखते थे। जिनमें एक आंख, दूसरा कान एवं तीसरा जबान बंद किये था।

बापूसे किसीने पूछा इन बंदरोंके रखनेका क्या अर्थ हैं। बापूने कहा "बुरी चीजोंको देखनेसे आंखें बंद करो, बुरी बात सुननेसे कान बंद करो एवं बुरी बात कहनेसे जबान बंद करो।"

शब्द— मानसिक वेगोंको उत्तेजित करनेमें "शब्द" का कम हाथ नहीं है। नाचके साथ ही विलासी गीतोंको भी सुननेकी मनाही है, जैसा गांधीजी ने कहा है। "यदि कान पापमें प्रवृत्त हो तो उनमें रुईकी डाट लगा देनी चाहिए। जिस जगह गंदी बात चीत हो रही हो, गंदे गाने गाये जारहे हों वहांसे भाग जाना चाहिए।"

महान मनोवैज्ञानिक हेविलाक एलिसने बहुत अन्वेषणके बाद लिखा है "गीतोंसे कामवासना जाग्रत होती है और यह सिद्ध हो चुका है कि मधुर शब्दों तथा गीतोंका परिणाम पक्षियोंमें नर और मादाका मिलन होता है।"

आज भी पहाड़ी जातियोंमें पति–पत्नी नृत्य एवं संगीतके द्वारा एक दूसरेको प्रेमके लिये आकर्षित करते हैं। प्रकृतिने भी युवावस्थामें ही ग्रीवाके उस भागकी रचनामें भारी परिवर्तन किया है, जिसका गानेमें अधिक उपयोग होता है सिनेमामें इस प्रकारके गीत सुनते-सुनते लोगोंमें कामोत्तेजना हो जाती है और फिर घर आते-आते अपनेको संयमित रख सकनेमें असमर्थ हो जाते हैं और फलस्वरूप उनका पतन निश्चित है।

संसारके महान दार्शनिक प्लेटोने लिखा है "राज्यमें गान विद्याकी किसी प्रकार आज्ञा नहीं देनी चाहिये। यद्यपि गान-विद्याका सदा कामुक प्रभाव नहीं पड़ता पर जिनसे मानसिक विचार दूषित होते हैं उनसे शराबी–पन, जनानापन एवं निकम्मापन बढ़ता है।" जैसाकि आज सिनेमा एवं रेडियोपर होने वाले गानोंको सुनकर छोटे-छोटे बच्चे भद्दे एवं अश्लील गाने गाते फिरते हैं। जिनके कुछ उदाहरण इस प्रकार है "आजा मोरे बालमा" "मेरा तन डोले मेरा मन डोले······" "नन्हा सा बालमा" आदि।

प्लेटो दो प्रकारके संगीत युद्ध एवं प्रार्थना सिखानेके पक्षमें हैं। प्राचीन कालमें युद्धकी तैयारीके लिए मारू बाजा बजता था और उसमें वीरताको प्रोत्साहन देने वाले गाने गाये जाते थे और जिसे सुनकर सिपाहीके अंदर जोश एवं उमंगका श्रोत उमड़ पड़ता था। आज भी सेनामें इस प्रकार के बाजेका नियम है।

आपने इतिहासमें पढ़ा होगा कि पृथ्वीराजकी आंख बन्दकर देनेपर भी चन्दबरदाईके कविता पाठपर मुहम्मदगोरीको उन्होंने बाणका शिकार बनाया।

प्रार्थनाके बलपर साधु-सन्तोंने धर्मका खूब प्रचार किया और जनता को उस ओर आकर्षित किया। इस युगमें बापूने प्रार्थनाकी शक्तिको दिखाया और आज उनके स्व० शिष्य विनोबा भी प्रार्थनाके बलपरही बढ़ते चले आये एवं संसार उनकी सफलताकी ओर बड़ीं गंभीरतासे देख रहा है। उन महान साधू-सन्तों-कबीर, तुकाराम, नानक, आदिको गुजरे एक समय बीत गया फिर भी वे अपने भजनोंके द्वारा हम लोगोंमें सदा विद्यमान हैं। अखिल भारतीय साधु समाजके अध्यक्ष स्व०संत तुकडोजी महाराजने प्रार्थनामें भजन के बलपर भारत विशेषकर महाराष्ट्रीय प्रदेशमें लोगोंके अन्दर जान फूंक दी।

गंध—शरीर शास्त्रके अनुसार नासिका एवं जननेन्द्रियका गहरा सम्बन्ध हैं। प्राय: देखा जाता है कि यौवनकालमें लड़के–लड़कियोंको नकसीर फूटती है एवं उस समय जननेन्द्रिय प्रदेशमें ठंडक पहुँचानेसे नकसीर बंदहो जाती है अतः इस रोगके लिये कटि एवं मेहन नहान उपयोगी हैं।

कमजोर स्त्री—पुरुषोंमें उत्तेजना, हस्तमैथुन एवं मैथुनके बाद ही नकसीर फूटते देखा गया हैं। वीर्य क्षय होनेपर एवं नव वरवधूको प्रायः जुकामकी शिकायत बनी रहती है। इसका प्रधान कारण हमारे अंदरसे कैल्सियमका क्षय होना है। इसका वर्णन चिकित्सा अध्यायमें मिलेगा। शहरोंमें विभिन्न प्रकारकी गन्धकी अनेकों दूकानें दिखाई देती हैं। चाहे वह गंध किसी फूलका हो अथवा कस्तूरीका पर सबका प्रभाव वीर्यपर उत्तेजक ही होता है, जैसाकि गांधीजीने लिखा है:—

"ब्रह्मचारी तीव्र तथा उत्तेजक पदार्थोंको नहीं सूंघेगा। बनावटी सेंटों और एसेंसोंकी तरंगोंसे शुद्ध मिट्टीकी सुगंध ज्यादा मीठी होती है।"

गंधके सम्बन्धमें इसी प्रकार प्लैटोने भी लिखा है:—

"बनावटी गंधोंका प्रयोग सदाचारके लिये अत्यन्त हानिकर है और सदाचारका जीवन व्यतीत करनेके लिए फूलोंसे बचना उत्तम है", प्राचीन आचार्य विद्यार्थियोंको फूलोंसे बचनेका उपदेश करते थे पर आजके

विद्यार्थी तो कोटके कालरमें भी फूल लगाकर स्कूल जाते हैं और शामको तो प्रायः लोग शहरोंमें मालियोंसे माला खरीदकर पहनते भी हैं।

मनूने भी गंधसे बचनेकी सिफारिश की है जिसकी पुष्टि विदेशी विद्वान एलिसने इस प्रकारकी है। 'फूलोंमेंसे जो सुगंध आती है वह कुवासनाओंको पालता है। बनावटी फूलोंके गंधका प्रयोग सदाचारके लिये अत्यन्त हानिकारक है। सदाचारी जीवन बितानेवालोंको फूलोंसे बचना चाहिए।"

स्पर्श—मनोभावोंको जाग्रत करनेका स्पर्श महान साधन है। श्री वेन साहबने लिखा है "स्पर्श प्रेमका आदि और अन्त है।" सहशिक्षामें भी यही दोष मालूम होता है। इस विषयमें श्री किशोरलाल भाईने लिखा है:—"इस मर्यादाके भीतर होनेवाला परिचय सद्भावनाओंका पोषण करता है। स्पर्श सेवाके लिये होता है और संभोग निर्दोष होता है। इस मर्यादाको छोड़कर होनेवाला परिचय और स्पर्श विलासी भावनाओंका पोषण करता है और उनका परिणाम व्यभिचार एवं वर्णशंकर होता है।" (स्त्री०पु०म०५७)

अनातुरः स्वानि खानि न स्पृशेदनिमित्ततः।
रोमाणि च रहस्यानि सर्वाण्येव विवर्जयेत ॥१४४॥४॥ मनु०

स्वस्थ पुरुष अकारण अपने इन्द्रिय गोलकों को और गुप्त स्थानोंके बालों को न छुए।

सब अवयवोंकी अपेक्षा त्वचाका मानसिक दुर्भावोंको जाग्रत करनेमें तत्काल प्रभाव होता है। जो व्यक्ति स्पर्शकी भयानक आंधी, जिससे सिहरन पैदा होती है, से बच जाता है वह इसके उन दुष्परिणामोंसे भी बच जाता है जो उसे अंधा बना देनेवाले होते हैं।

आप नित्य अनुभव करते हैं कि गुदगुदीसे त्वचा उत्तेजित होनेपर मनोविकारका होना स्वाभाविक है। बच्चोंको इस आदतसे बचाये रखना चाहिए और ओंठ अथवा जबान लगाकर स्पर्श करते हुए बच्चोंको चूमना भी ठीक नहीं है। इस सम्बन्धमें श्री किशोरलाल भाईने लिखा है " किसी भी तरहसे चूमने या चूमने देनेकी बातको नापसंद करनेकी भावना उनमें पैदा करनी चाहिए। बच्चोंको उसे सहलानेके लिए मजबूर नहीं करना चाहिये।"

"अत्यंत परिचित स्पर्श आधा संभोग ही है। पूरे संभोगके लिए एक व्यक्ति और आधे संभोगके लिए दूसरा एक या अनेक व्यक्ति, यह पवित्र जीवन नहीं है।"　　स्त्री० पु० म० ६५

हमारे ऋषि-मुनियोंका ही नहीं बल्कि पश्चिमी विद्वान ब्लाच साहब का भी कहना है "कोमल विस्तरोंपर सोना ब्रह्मचर्यमें बाधक है।" भारतीय धर्म शास्त्रोंमें ब्रह्मचारीके लिए लकड़ीके तख्तेपर सोनेका विधान है एवं इसी आधारपर गुरुकुलोंमें ब्रह्मचारियोंके सोनेके लिए तख्ता दिया जाता है। यही नही इससे यौवनको सदा कायम रखने वाली रीढ़ सशक्त बनी रहती है एवं उसके द्वारा सारे शरीरका रक्त संचार सुचारु रूपसे होता है।

घोड़े आदि की सवारी भी ब्रह्मचर्य रक्षामें बाधक है। धर्मशास्त्रमें कहा गया है "ब्रह्मचारियों घोड़ा, वैल, ऊँट एवं हाथी आदि की सवारी न करो।" इसका उद्देश्य केवल इतना ही है कि नित्य नहीं पर कभी-कभी आवश्यकता आ जानेपर किया जा सकता है।

एक साथ समवयस्क स्त्री अथवा पुरुषको साथ सोना भी हानिकर है। इससे परस्पर उत्तेजना होना स्वाभाविक है। इस सम्बन्धमें गाँधी जी ने एक क़मरेमें भी सोनेकी सलाह न देकर अलग कमरोंमें सोनेकी सिफारिश की है।

रस—ब्रह्मचर्य पालनमें अस्वाद व्रतका वहुत वड़ा महत्व है। विना इसके ब्रह्मचारी रह सकना निरा ढोंग है। पू० बापूने लिखा है " स्वादेन्द्रियपर संयम प्राप्त करना चाहिए। मेरा अनुभव है कि जिसने स्वादेन्द्रियपर अधिकार नहीं पाया, वह काम लिप्साका भी संयम नहीं कर सकता। काम लिप्साका संयम स्वादेन्द्रियके संयमके साथ नत्थी है।" रस केवल एक ही नहीं बल्कि छः प्रकारके—मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय एवं तिक्त—हैं और इनमेंसे किसी न किसी रस विशेषपर मन चल ही जाता है।

नशीली पेय— शराव, ताड़ी, चाय, काफी एवं तम्वांकू तथा मिठाई आदि खानेका प्रचार तेजीसे लोगोंमें हो रहा है। लोग स्वादेन्द्रियके वश होकर पेटू होते चले जा रहे हैं, जिसका प्रभाव ब्रह्मचर्य पर पड़ रहा है इसीलिए पेटूके संबंधमें मनु भगवानने कहा है:—

"अनारोग्य मनायुष्यम् स्वर्ग्यञ्चाति भोजनम् ।
अपुण्यम् लोक विद्विष्टम् तस्मात् तत् परिवर्जतः ॥"

अति भोजन रोगकारी, आयुको नाश करने वाला, नरकको देनेवाला, पाप रूप, लोकसे द्वेष करानेवाला है। इसलिए अधिक भोजन करना छोड़ दें।

"जितं सर्वं जिते रसे"

रस विजयी सर्वत्र विजयी, शंकराचार्य।

गांधीजीने कहा है "मेरा अनुभव है कि जिसने स्वाद जीता नहीं वह विषयको जीत सकता नहीं। स्वाद जीतनेके लिये एक सुनहरा नियम यह है कि तमाम मसालेका त्याग। शरीरके पोषणके लिये खाये, स्वादके लिये नहीं।"

डा० ब्लौचका कहना है कि "चाय, काफी, मारफीनको अधिक मात्रामें लेनेसे मनुष्य नपुंसक हो जाता है। ड्युवी (Dewy) ने परीक्षण करके देखा है "कई लोग जो दिनमें ५-६ वार काफी पीते थे, नपुंसक हो गये, काफी छोड़ देने पर वे ठीक हो जाते और शुरू कर देनेसे फिर नपुंसक हो जाते थे।"

डा० केलागने तम्बाकू व्यवहारके संबंधमें कहा है "बचपनमें इस दुर्व्यसनके लगजानेसे शीघ्र ही कुवासनायें प्रदीप्त हो उठती हैं और कुछ ही वर्षोंमें सदाचारी तथा पवित्र युवकको काम वासनाओंका ज्वालामुखी बना देती है। देर तक तम्बाकूका प्रयोग करते रहनेसे नपुंसकता आ जाती है।"

सिगरेट पीनेके सम्बन्धमें अंतर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य परिषदने यह घोषणा की है कि इससे फेफड़ेका कैंसर तक हो सकता है। एक सिगरेट पीनेसे २५ मिली. विटामिन सी. नष्ट होता है फलस्वरूप लोग जटिल लोगोंके शिकार होते है।

आजके मां-बाप बच्चोंको मिठाई खानेके लिये रोजाना पैसा देते हैं पर वे भूल जाते हैं कि वे अपने बच्चोंके लिए स्वयं खाई खोद रहे हैं जैसा कि डा० ब्लौचने कहा है "जो बच्चे मिठाइयोंके बहुत शौकीन होते हैं, उनको गिरने की बहुत अधिक संभावना बनी रहती है और दूसरे बच्चोंकी अपेक्षा हस्तमैथुन आदि कुकर्मों की तरफ अधिक झुकते हैं।"

डा० केलागने भी कहा है "जो आदमी अचार, मैदेकी रोटी, मिठाई खाता

है, चाय और काफी पीता है और तम्बाकू इस्तेमाल करता है, उसके लिए अपने विचारोंका पवित्र जीवन बिता सकना आसमानमें उड़नेकी आशाके समान है। यदि वह पवित्र जीवन बिता सके तो एक चमत्कार होगा पर मानसिक पवित्रताका रख सकना उसके लिये सर्वथा असंभव है।"

डा० ब्लौच एम० डी० ने कहा है "मिठाईके शौकका कुप्रवृत्तिके साथ सम्बन्ध है। जो बालक मिठाईका अधिक शौकीन होता है वह दूसरे बालकोंकी अपेक्षा हस्तमैथुनादिक कुटेवोंमें अधिक आसानीसे फँस जाता है।"

पू० गांधीजी ने भी लिखा है "जो जिह्वाको कब्जेमें रखता है उसके लिये ब्रह्मचर्य सुगम है। जिस हदतक पशु ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं उस दरजे तक मनुष्य नहीं करता। इसका कारण जीभपर पूरा-पूरा निग्रह न होना है। पशु महज पेट भरने लायक घासपर गुजर करते हैं।"

लोग सदा आवश्यकतासे अधिक खानेके आदी हैं पर वह भूल जाते हैं कि वे अपनी कब्रको स्वयं अपने दाँतों खोद रहे हैं, जैसाकि डा० केलागने लिखा है, "पेटूपन सदाचारका शत्रु है अधिक खा जानेसे वीर्यनाश होना निश्चित है। इसलिये जितनी भूख लगती हो उससे कुछ कम ही खाना चाहिये।"

मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः ।
तौर्यत्रिकं वृथाटया च कामजो दशको गणः ॥४७॥७॥ मनुस्मृति

कामोत्पक दस व्यसन ये हैः—शिकार, चौपड़-जुआ आदिकाखेल, दिनमें शयन, परनिन्दा, स्त्रियोंका अतिसंग, नशीली वस्तुओंका सेवन, गाना-बजाना-नाच आदि और व्यर्थ घूमना। कामी पुरुष अन्मस्यक होकर दिल बहलावके लिये इन व्यसनोंमें फंसता है।

ब्रह्मचारीके लिए नियम है कि बहुत खट्टे, तीखे एवं नमकीन पदार्थ न खाये। राजसी भोजनसे कुसंस्कार जाग उठते हैं जैसाकि गांधीजीने लिखा है

"उत्तेजक भोज्य मिर्च और दूसरे मसाले, टिकिया और मिठाइयां जैसे चर्बीदार गरिष्ठ भोजन और सुखाये हुए पदार्थोंको परित्याग कर देना चाहिए।" "प्रयोग द्वारा हमने अनुभव किया है कि भोजन सादा, बिना मिर्च मसालेका स्वाभाविक रूपमें करना चाहिए। मैंने खुद ६सालतक प्रयोग करके

देखा है कि ब्रह्मचारीका आहार वनपके फल हैं। जिन दिनोंमें मैं हरे या सूखे वनपके फलोंपर रहता था उन दिनों जिस निर्विकारपनका अनुभव होता था वह खूराकमें परिवर्तन करनेके वाद न हुआ।"

भगवान बुद्धने कहा है "तन्दुरुस्त साधू दिनमें केवल एक बार भोजन करे। रोगादि खास कारणके बिना बार-बार खाने वाला पापी होता है। "घी, दूध, दही, गुड़ वगैरह गरिष्ठ खाद्य पदार्थ बौद्ध साधू न खाये।"

इससे स्पष्ट है कि उपरोक्त पदार्थ कामोत्तेजक हैं और अपक्व फल सब्जी ब्रह्मचर्य पालनमें सहयोग देनेवाले हैं।

इतना जान लेनेके बाद मोटे तौरपर भी वीर्य रक्षाके बारेमें जान लेना आवश्यक है। सबसे पहिले हमें अपने आहार-विहारमें सुधार करना चाहिये। हमारे किसी भी कार्य एवं उद्देश्यको दृढ़ बनानेमें भोजनका बहुत बड़ा हाथ है। हमें सदा सादा, ताजा, शुद्ध एवं भूख लगनेपर अल्पाहार ही करना चाहिए। इससे हमारा शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकारका विकास होता है।

भगवान बुद्धने कहा है कि "एक बार हल्का आहार करनेवाला महात्मा है, दो बार संयत करके खानेवाला बुद्धिमान व भाग्यवान है और इससे अधिक वे अटकल खानेवाला महामूर्ख, अभागा और पशुका भी पशु है।"

बर्नरमैकफेडेनने कहा है "आजकल साधारण लोग भोजनके बहांने जितने पदार्थोंका सत्यानाश करते हैं उनके चतुर्थांशसे ही उनका काम बड़े आनन्दसे चल सकता है।"

भगवान वामनने कहा है "निकम्मा कौन है? पेटू।"

डा० हेने कहा है "मनुष्य जितना खा लेता है उसका तिहाई हिस्सा भी नहीं पचा सकता हैं। बाकी पेटमें रहकर रक्तको विषैला बनाकर असंख्य विकार पैदा करता हैं। जिससे प्रायः शक्तिका दोहरा नाश होता है। एक तो इस फालतू भोजनको पचाने और दूसरे उसको बाहर निकालनेमें।"

डा० एडिसनने कहा है "If you can conqure your tongue only, you are sure to conqure your whole body and mind at ease." यदि आप केवल अपने जिव्हाको जीत सकें तो

निश्चय ही आप आसानी से संपूर्ण शरीर एवं मस्तिष्कपर विजय पा सकते हैं।

जिव्हाको ही संस्कृतमें रसना हैं क्योंकि यह श्रृंगार, गीत आदि सभी नव-रसको उत्पन्न करने वाली होती है। सात्विक भोजनसे शांत, राजसीसे श्रृंगार तथा तापसीसे वीभत्स एवं रौद्रादि रस उत्पन्न होता है। रातको सदा सादा एवं उपयुक्त आहार करना चाहिए और गरम दूध उत्तेजक होता है।

भगवान बुद्धने कहा है 'इन्द्रियकों वशमें रखनेके लिये स्वादेंद्रियको वशमें रखना चाहिये।" उपरोक्त कथनसे स्पष्ट है कि यदि हम शांत रसका रस्वादन करके अपने वीर्यकी रक्षा करना चाहते हैं तो हमें पूर्व वर्णित गीतामें बताये सात्विक भोजनका आश्रय लेना चाहिये—

अतः हमें ऐसा ही आहार करना चाहिए जो सात्विकके साथ ही संतुलित भी हो ताकि हमें स्वस्थ जीवनके लिये प्रत्येक तत्व पर्याप्त मात्रामें मिलता रहे एवं जीवन–विकासके दिशामें अभावकी अनुभूति न हो।

ब्रह्मचर्य रक्षाके लिये भोजनको भी हम तीन भागोंमें विभाजित करके जीवनमें उतारें तो समझने एवं अपनानेमें सुगमता होगी और हम उस पर अलग-अलग प्रयोग भी करके देख सकते है पर यहाँ भी मैं स्वयं एवं दूसरोंके प्रयोग एवं अनुभवके आधारपर ही बताने का प्रयत्न करूँगा। आपने पढ़ा एवं कथाओंमें सुना होगा कि हमारे पूर्वज ऋषि जंगलोंमें निवास कर फल, फूल एवं कंद खाते और ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करते थे और उसी के प्रतापसे ही वह महान ग्रन्थोंकी रचना कर सके। ब्रह्मचर्यव्रती एवं प्रयोगों पू० बापूने लिखा है कि बनपके फल ब्रह्मचर्य पालनमें बहुत सहायक होते हैं।

श्री मनु–सतरूपाजी ने नैमिषारण्यमें मूल, फूल, फल, शाक एवं कंद खाकर तपस्या किया। इस सम्बन्धमें तुलसीदासजी ने लिखा है:-

करहिं अहार, शाक फल कंदा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानंदा॥

पर फलोंमें हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि कौन-कौन फल हों ताकि हमें पर्याप्त मात्रामें सभी तत्व मिल जायें अतः हमें अपने भोजनमें नित्य ऋतुके फल-सेव, अमरूद, नाशपाती, शरीफा अंजीर, अंगूर, खीरा, ककड़ी, पपीता एवं खरबूजा आदि ९/१० भाग, सूखे और काष्ठज मेवे, बादाम, नारियल, अखरोट, मूंगफली, पिश्ता, चिरौंजी आदि जो जहाँ सुलभ हो, १/१०

भाग लेना चाहिए। जहाँ तक एवं काष्ठजमें बोंकी जो सुविधानहो तो कंद, आलू, शकरकंदी, एवं मिश्रीकंद आदि तथा हरी सब्जी लेना चाहिये। आपने कभी सोचा कि ऐसा क्यों? इसका मात्र कारण है हमारे शरीर में अधिक से अधिक मात्रामें क्षार (सात्विक), तत्वका पहुँचना। क्षारसे इन्द्रियमें उत्तेजना नहीं शांति उत्पन्न होती है, जिससे हमारे मस्तिष्कके अंदर चंचलता नहीं स्थिरता होती है और इसी के वलपर ही हम ब्रह्मचर्यपर विजय प्राप्त कर सकते है।

दूसरा नम्बर फल और दूधका है जिसपर चलकर हम आसानीसे रह सकते हैं। और बहुत हद तक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन भी कर सकते हैं। इस आहारमें दूधकी मात्रा कमसे कम और फलकी मात्रा अधिक से अधिक लेनी चाहिये ताकि हमारे अंदर सदा क्षारकी ही प्रधानता रहे पर दूध गरम नहीं धारोष्ण और वह भी घास चरनेवाली गाय या बकरीका, भैंसका नहीं।

तीसरा नम्बर साधारण भोजनका है जिसमें फल, दूध, अन्न एवं सब्जी हैं। इसमें स्वास्थ्यके लिये प्रायः सभी तत्व आ जाते हैं। किन चीजों को खाना चाहिये, जाननेके पहले यह भी जान लेना आवश्यक है कि हमें किन-किन तत्वोंकी किस मात्रामें जरूरत है। हमारे भोजनमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, प्राकृतिक लवण, विटामिन एवं फुजलाकी आवश्यकता है।

कार्बोहाइड्रेट, से शरीरको गरमी प्राप्त होती है। इसके दो भाग हैं:- (१) श्वेतसार और (२) शर्करा

श्वेतसार–यह प्रायः सभी अन्न कण गेहूँ, जौ, बाजरा, ज्वार एवं चावल, आदि, कंद एवं मीठे फलोंमें भी पाया जाता है।

शर्करा– गुणके अनुसार निम्नांकित भागों में विभाजित किया गया है।

१– ईख शर्करा– गन्नेसे बनी शर्करा।

२– दुग्ध शर्करा– दूधमें पाई जानेवाली शर्करा।

३– द्राक्ष शर्करा– अंगूरमें पायी जानेवाली शर्करा।

४– फल शर्करा– फलोंमें पाई जानेवाली शर्करा।

५– अन्न शर्करा– अन्नके पाचनसे बनी शर्करा इन पांचों शर्करा में लोग प्रायः ईख शर्करासे ही परिचित हैं। इसीके तो मिठाई, शर्बत

एवं अन्य भाँति–भांतिके खाद्य बनकर लोगोंके सामने आते हैं और उन्हें खाते हैं। इससे शरीरमें अम्लता बढ़ती है और उस अम्लमे पेट एवं रक्तमें उफान होनेसे उत्तेजना होती है, और फलस्वरूप वीर्यका पतन एवं नष्ट होना स्वभाविक है। अतः हमें ईख शर्करा इस्तेमाल न करके शेप चार प्रकारके ही शर्कराको काममें लेना चाहिये। यदि करें भी तो जिसमें यह शर्करा पाई जाती हो उसीको सीधे इस्तेमाल करें जैसे गन्ना चूसना अथवा गन्नेका रस पीना पर चूसना सर्वोपरि है क्योंकि इसमें लार मिलकर वह सुपाच्य एवं क्षारमय हो जाता है और सभी प्राकृतिक लवण, जो उस शर्करा की अम्लताको सम करने वाले एवं पचानेमें सहायक होते हैं, मिल जाते हैं। जैसे कैल्शियम यह ईख शर्कराके पाचनके लिये बहुत ही आवश्यक है। सभी शर्कराके मूल साधन प्राकृतिक खाद्यको ही लेना चाहिये और कृत्रिम रूपसे अलग करके कभी।

प्रोटीन– शारीरिक रचना, विकास एवं क्षति पूर्तिके लिये आवश्यक है। जब हमारे भोजनमें इस तत्वका अभाव होता है तो विकास क्षीण हो जाता है। प्रोटीन गुणके अनुसार निम्नांकित भागोंमें बांटा गया हैः–

(१) दूध तथा दूध जन्य खाद्य। (२) हर प्रकारके काष्ठज मेवे–बादाम, अखरोट, मूंगफली, चिरौंजी, पिश्ता आदि। (३) अंडा और मांस (४) दाल

इनमें ब्रह्मचारीके लिये काष्ठज मेवेका प्रोटीन उच्चकोटिका है, फिर दूधका निरापद है पर मांस एवं अंडाका प्रोटीन ब्रह्मचर्य पालनमें महान बाधक है अतः आप मांसाहारीको कभी नैष्ठिक ब्रह्मचारी नहीं पा सकते। दालका प्रोटीन भी अच्छे प्रकारका नहीं होता। इसमें प्रायः सल्फ्यूरिक एसिड पाया जाता है जिससे उत्तेजना होनेकी संभावना रहती है पर यदि किसी कारण वश लेना ही पड़े तो अंकुरित करके अपक्व ही लेना चाहिये।

चिकनाई– शरीरके अंदर ईंधन एवं चिकनाहट का कार्य करता है। त्वचाके नीचे वसाकी तह होनेके कारण स्नायु संस्थान सुरक्षित रहता है। इसके अभावमें स्नायुविक उत्तेजना होना एवं पित्तका कुपित होना स्वाभाविक है अतः इसके अभावमें ब्रह्मचारी रह सकना कठिन है।

चिकनाई गुणके अनुसार निम्नांकित भागोंमें बांटा गया है :—

(१) दूध एवं दूध जन्य– खाद्य घी, मक्खन, क्रीम।

(२) काष्ठज मेवे– बादाम, अखरोट, मूंगफली, पिश्ता, नारियल आदि।

(३) तेलहन– तिल्ली, सरसों, अलसी आदि। चिकनाईके अभावमें शरीर संस्थान शर्कराको वसामें बदलकर काम चलाता है।

विटामिन–– का जीवनी शक्ति बढ़ाने और शक्ति कायम रखनेके लिये हमारे भोजनमें पर्याप्त मात्रामें होना आवश्यक है। गुणके अनुसार निम्नांकित भागोंमें बांटा गया है :—

विटामिन ए० शरीरका विकास, रक्त संचालन एवं रचना ठीक-ठीक होती है। इसके अभावमें कमजोरी, आंखका रोग विशेषकर रतौंधी, श्वास नलीमें दोष, त्वचा रोग एवं मस्तिष्क मंदता आदि रोग होते हैं।

यह संपूर्ण दूध, मक्खन, पनीर, हरी पत्तीदार भाजी, गाजर एवं हरे पीले खाद्योंमें प्रायः पाया जाता है।

विटामिन बी०— बेरी-बेरी रोगसे रक्षा करता है। विकासमें सहायक एवं स्नायु संस्थानको शक्ति प्रदान करता है।

भूख तेज लगती है, पाचन शक्ति सबल होती है एवं इसके अभावमें पाचन क्रिया दूषित, शक्ति कम, कब्ज एवं दुबलापन होता है एवं वीर्यको शक्तिशाली बनानेवाला तथा इसे शरीरमें रमानेवाला चुल्लिकाग्रंथिके बढ़ जानेसे मस्तिष्कमें मंदता आती है।

यह संपूर्ण अन्न कण, दूध, ताजे फल, मखनिया दूध, सब्जी, कन, शहद एवं चोकरमें पाया जाता है।

विटामिन सी०— का मुख्य कार्य शारीरिक शक्ति एवं रक्त भार संतुलन कायम रखना तथा स्कर्वी रोगसे रक्षा करना है। इसके अभावमें शरीरपर पीले-काले दाग पड़ना वजन घटना, शारीरिक दुर्बलता, सांस लेनेमें कष्ट, हृदयकी गति बढ़ जाना, रक्तस्राव, तिल्ली, यकृत एवं आंतके रोग हो जानेकी सम्भावना रहती है।

नारंगी, नीबू, टमाटर, आंवला, हरी सब्जी (कच्ची) एवं अंकुरित अन्न कणमें पाया जाता है।

विटामिन डी०— शरीरमें चूने कैलसियमके संतुलनका कार्य करता है एवं अन्य खाद्य तथा प्राकृतिक लवणके समीकरणमें सहायक होता है। यह रक्तके संतुलन एवं हड्डियोंकी रचनाके लिए अत्यावश्यक है।

इसके अभावमें संक्रामक रोग, मांसपेशियोंकी कमजोरी, स्नायविक संस्थानकी दुर्बलता, हड्डियोंमें खराबी एवं यक्ष्मा ऐसे खतरनाक रोग होते हैं।

विटामिन ई०—– का संतानोत्पत्तिपर विशेष प्रभाव पड़ता है एवं लोहाके समीकरणमें सहायक होता है। इसके अभावमें रक्तहीनता, गठिया एवं वातरोग उत्पन्न होनेकी संभावना रहती है एवं अनुपस्थितिमें वंध्यापन, प्लीहा-तिल्लीकी खराबी एवं रक्तहीनता रोग होता है।

यह संपूर्ण अन्न कण गेहूँ, मकई, आदि, दूध, शाक-सब्जी एवं ताजे फल तथा अंकुरित अन्नमें पाई जाती है।

प्राकृतिक लषण एवं फुजला—– अन्य खाद्य उचित मात्रामें प्राकृतिक अवस्थामें लेते रहनेसे ये तत्व अपने आप प्राप्त होते रहते हैं।

इतना जान लेनेके बाद यह जान लेना भी आवश्यक है कि कौन तत्व किस अनुपातमें होना चाहिए। यह अनुपात उतने भोजनपर बनाया गया है जितना आसानीसे पच जाता है। यह अनुमानतः २-२ पौंडसे अधिक नहीं होना चाहिये।

५० प्रतिशत-ऋतुके फल-शंतरा, सेव, केला अमरूद, पपीता, मौसमी, टमाटर एवं खीरा, ककड़ी आदि।

३५ प्रतिशत-ऋतुकी हरी सब्जियां-पालक, पातगोभी, लौकी, ककड़ी, तरोई एवं पत्तीदार सब्जियाँ।

९ प्रतिशत-काष्ठज मेवे।

६ प्रतिशत–सूखे मेवे किशमिश, मुनक्का, अंजीर एवं छोहाड़ा आदि।

यदि फल न मिले तो हरी सब्जीकी मात्रा बढ़ाकर उसमें १०-२० प्रतिशत अंकुरित अन्न कण शामिल कर लेना चाहिए। अपक्वाहार ही लेना चाहिये।

नशीली चीजें—– कामोत्तेजक होती हैं। चाय, काफी, गांजा, भाँग, तम्बाकू, चरस, सिगरेट एवं शराब आदिसे सदा बचना ही चाहिए।

भोजनके आवश्यक नियम

भोजनके सम्बन्धमें करें --

१– सच्ची भूख लगनेपर ही खाना चाहिये ।

२– उतना ही खाना चाहिये जितनेसे भूख शांत हो जाय ।

३– बहुत सी चीजोंको एक साथ न खाकर कम से कम खाद्य, बिल्कुल सादा भोजन करना चाहिये ताकि पेटपर व्यर्थका बोझ न हो ।

४– भोजनके समय चित्त भोजनमें ही एकाग्र रखना चाहिये ।

५– जब तक पहिली ग्रास अच्छी तरह चबा न लें तब तक दूसरा ग्रास मुंहमें न डालें ।

६– भोजन शांति पूर्वक स्थिर चित्त होकर करना चाहिये ।

७– पाचन क्रियाके बारेमें अच्छे विचार रखिये । यह आशा कीजिये कि यह ठीक ठीक काम करेंगी पर उसके प्रति ईमानदारीके वर्ताव रखें ।

८– सोनेके तीन घंटे पहिले भोजन कर लेना चाहिये ।

९– दो भोजनोंके बीच ५-६ घंटेका अंतर अवश्य होना चाहिये ।

१०– सप्ताहमें कमसे कम एक रोज उपवास करें !

११– जहां तक संभव हो अपक्वाहार ही करना चाहिये ।

भोजनके सम्बन्धमें न करें---

१– सोनेके बाद उठकर तुरन्त नहीं खाना चाहिए !

२– चिंतित शोकातुर एवं जल्दबाजीमें कभी भोजन न करें ।

३– भोजनके समय व्यापार, समाज अथवा गृहस्थी सम्बन्धी समस्याओंपर बातचीत नहीं करनी चाहिये ।

४– ऐसी कोई चीज न खायें जिसे खानेकी रुचि न हो !

५– मिर्च, मसाला आदि उत्तेजक पदार्थोंकी सहायतासे भोजन न करें ।

६– ज्यादा गरम एवं ठण्डा नहीं खाना चाहिये और यदि कभी खायं भी तो धीरे-धीरे ।

७– हंसते हुये जल्दबाजीमें एवं भोजनको चिंताका विषय बनाकर न करें ।

८– जो कुछ भी सामने हो उसे प्रेम पूर्वक खाना चाहिये न कि मुंह विचकाकर।

९– गलेमें जलन अथवा गंदी हवा बननेपर हरगिज न खायें।

१०– दुष्पाच्य एवं गरिष्ट भोजन भूल कर भी न करें।

११– पक्वाहार विशेषकर तली भुनी नहीं खाना चाहिये।

नोट .– खानेके पूर्व प्रार्थना अनिवार्य है।

भोजन क्रम

ब्रह्मचर्यके संबंध और भोजनके बारेमें पहले बताया जा चुका है, फिर मैं यहां दुहरा रहा हूँ। सबसे उत्तम है कि किसी प्रकारका नाश्ता न किया जाय और यदि करें भी तो कोई रसीला फल या हरी सब्जी (शंतरा, टमाटर, गाजर, खीरा एवं रसभरी आदि।) का रस लिया जाय।

फलाहार– यदि काम न चले तो सुबह ८ बजे किसी ताजे फल-शंतरा, टमाटर, गाजर, या खीरा आदि का रस लिया जा सकता हैं।

१०-११ बजे– आधा कीलो, ठोस फल जैसे :– अमरूद, पपीता, सेब एवं रसदार फल– टमाटर, संतरा, मौसमी आदि एवं काष्ठज मेवा-बादाम, पिश्ता, मूंगफली, अखरोट एवं मिल सके तो ६० ग्राम किशमिश, मुनक्का, खजूर आदिमें से कोई एक।

तीसरे प्रहर— यदि भूख हो तो कोई एक रसदार फल २५० ग्राम शामको दोपहरका ही जैसा भोजन और अच्छा हो कि एक समय ५० ग्राम काष्ठज मेवा एवं एक समय ५० ग्राम सूखा मेवा लें।

फल दूध— सुबह तो बिना नाश्तेके ही रहें वरना फलाहार में बताया नाश्ता। १०-११ बजे ३०० से ५०० मिली० तक धारोष्ण दूध (गाय या बकरी का) एवं आधा कीलो ऋतुके अनुसार फल।

सायं– ५ सौ मिली० तक धरोष्ण दूध एवं ताजा फल ७०० ग्राम, सूखे मेवे ५० ग्राम एवं २० ग्राम काष्ठज मेवा।

यदि सम्भव हो तो दूध केवल एक ही समय लें वरना जैसा बताया

गया है। दूधको मीठा करनेके लिये ३० ग्राम शहद शीरा, अथवा राब या गन्ने का ताजा रस मिला सकते हैं।

फल, दूध, रोटी-सब्जी– १०-११ बजे हाथसे पिसे चोकर समेत आटे की रोटी अथवा कन समेत चावल एवं ३-५ सौ ग्राम सब्जी, २०० ग्राम सलाद (टमाटर, गाजर, पालक आदि)।

सायं-३०० से ५०० मिली० धारोष्ण दूध एवं आधा कीलो ऋतुके अनुसार फल एवं ५० ग्राम सूखा मेवा।

रोटी सब्जी– १०-११ बजे, हाथ पिसे १००-१५० ग्राम चोकर समेत आटेकी रोटीया कन समेत चावल, ३०० ग्राम ५०० ग्राम हरी सब्जी एवं २५० ग्राम सलाद।

सायं– दोपहरका सा ही पर यदि ऋतुके फलकी सुविधा हो जाय तो रोटी घटाकर बदलेमें फलकी मात्रा बढ़ा दें।

यदि आसानीसे शहद मिल जाय तो दिनमें ५० ग्राम तक शहद, १/४ ली० पानी एवं आधा नीबू का मिश्रण अच्छा रहेगा।

भोजनकी मात्रा आयु एवं कार्यके अनुसार बढ़ाया-घटाया जा सकता है और इसीके अनुसार भोजनका समय भी। जहां तक सम्भव हो नित्य ४-६ आंवला अवश्य लें।

कब्ज– यह वीर्यका सबसे बड़ा शत्रु है क्योंकि मलाशय एवं मूत्राशय के बीचमें ही शुक्राशय स्थित है। जब उसपर दोनोंका मिश्रित दबाव पड़ता है तो वीर्य बाहर निकल पड़ता है अतः स्मरण रहे कि कभी भी कब्ज नहीं रहना चाहिये और न रातमें पेशाब करनेके लिये उठनेमें ही आलस करनी चाहिये। श्री किशोर लाल भाईने लिखा है "रातमें उठनेकी आलससे बहुत देरतक पेशाब रोकनेसे वीर्यपर बुरा प्रभाव पड़ता है।"

सदा दो बार शौच जाना चाहिये और बंधा हुआ शौच होना चाहिये। जब शौच ठीक न हो तो २-३ सौ मिली. ताजा पानीका एनीमा लेकर पेट साफ कर लेना चाहिये पर जुलाब तो कभी भूलकर भी नहीं लेनी चाहिये उससे वीर्य कोष उत्तेजित होनेका भय रहता है। जो नाश्ता करते हों वे तीन बार भी शौच जायें तो उसे रोग नहीं समझना चाहिये क्योंकि कहा-

वत है "जै बार खाना तै बार जाना।" पर साधारणतः भोजन दो बार ही करना चाहिये !

मल-मूत्रकी हाजत रोकना– हाजत रोकनेसे वीर्ष कोष उत्तेजित हो जाता है और उसकी गरमीसे कभी भीं वीर्य दूषित होनेका भय रहता है। जब कभी हाजत हो फौरन उसे दूर करना चाहिए।

शौच अथवा पेशाबके समय कभी भी जोर नहीं लगाना चाहिये बल्कि स्वभाविक गतिसे होने देना चाहिये वरना वीर्य पर बुरा प्रभाव पड़ने के साथ ही बवासीरकी भी शिकायत हो जाती है। शौचके बाद गुदा एवं मूत्रेन्द्रियको ठंडे जलसे अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिये।

यह तो पहिले ही बताया जा चुका है कि मलाशय एवं मूत्राशयके बीच शुक्राशय स्थित है अतः मलमूत्रके रुकनेपर उसका उत्तेजित होना एवं फलस्वरूप वीर्य स्खलनका भी भय होना स्वभाविक है। इसी प्रकार स्त्रीके रजपर भी प्रभाव पड़ता है और प्रदर तक हो जानेकी संभावना रहती है।

जल– स्वास्थ्यप्रद आहारमें शुद्धजलका महत्व किसी प्रकार भी कम नहीं हैं। रोजाना खानेके एक घंटा पहिले एवं दो घंटे बाद, चौथाई-चौथाई लीटर करके २-२½ लीटर पानी अवश्य ही पीना चाहिए। जब पर्याप्त मात्रामें जल शरीरमें नहीं पहुँचता तो रक्त गाढ़ा पड़ जानेके कारण रक्त संचार सुचारु रूपसे नहीं होता अतः रक्तमें अवरुद्धता एवं उत्तेजनाके फलस्वरूप वीर्यपर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

पीनेके लिये जल स्वादिष्ट, शीतल, स्वच्छ, निर्गंध, हल्का एवं सूर्य रश्मियोंके संपर्कमें रहनेवाला होना चाहिए।

स्नान– नियमित रूपसे प्रातः एवं सायं अवश्य ही ठंडे जलसे स्नान करना चाहिए पर यदि सदा संभव न हो तो कमसे कम होलीसे दशहरा तक अवश्य ही दोनों वक्त नहाना चाहिए।

जितने बार पेशाब एवं पाखाने जायं गुदा द्वार एवं मूत्रेन्द्रियके अंदर के भागके मैलको तथा बाहरी त्वचाको शीतल जलसे अवश्य ही धोना चाहिये।

सुबह होते ही शीतल जलसे हाथ धोनेके बाद मुंहमें ताजा पानी भर

कर आंखोंपर कमसे कम १०० बार जलसे छींटा मारें एवं एक गिलास ताजा पानी पियें। साधारण अवस्थामें गरम जलसे तो कभी भी नहीं नहाना चाहिये। इससे स्नायु उत्तेजित एवं कमजोर होती है पर यदि कभी ऐसा करना ही पड़े तो वह जल शरीर ताप इतना होना चाहिए और अंतमें ठंडे जलसे नहालें या ठंडे जलमें निचोड़ी हुई तौलियासे बदन पोंछ लें वरना वीर्य में भी कमजोरी आनेका भय रहता है।

रातको सोते समय हाथ, मुंह एवं पैरोंको शीतल जलसे धोनेके बाद ही सोना चाहिए। इससे नींद भी अच्छी आती है एवं रातको स्वप्न-दोष होनेकी आशंका नहीं रहती।

जहां नदी, तालाव आदि हों अथवा तैरनेके तालाब (swimming tank) बने हों वहां तैरकर स्नान करना चाहिए एवं नाभितक पानीमें खड़े होकर उदरको शक्तिके अनुसार तौलियासे ५ से १० मिनट तक तेजीसे रगड़ना चाहिये। इससे जननेन्द्रिय प्रदेशमें ठंडक बनी रहती है एवं मल निष्कासक के चक्र मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान सक्रिय होकर वहां एकत्रित विजातीय द्रव्यको दूर करते हैं फलस्वरूप वीर्य एवं जननेन्द्रिय प्रदेशमें न तो उत्तेजना आती है और न वीर्य ही नष्ट होनेकी सम्भावना रहती है।

भोजनके आध घंटे पहिले यदि संभव हो तो ठंडे जलसे स्नान करें वरना ठंडी तौलियासे बदन पोछ लेना चाहिये। इससे मन प्रसन्न होनेके साथ ही रक्त संचारमें तेजी आकर भूख लगती है। यही कारण है कि नहानेके बाद ही भोजनका विधान है।

वायु– जीवनमें वायुका जलसे अधिक महत्व है। सदा शुद्ध एवं खुले वायुमें रहना एवं सोना चाहिये पर आज शहरोंमें जिस प्रकार शुद्ध वायुके बदले गंदी हवा मिलती हैं वह किसीसे छिपी नहीं है। इसी गंदी हवाके कारण ही मनोविकार जाग्रत होकर ब्रह्मचर्यपर घातक प्रभाव पड़ता है।

वेदमें कहा गया है "वायु अमृत है" शुद्ध वायु, शुद्ध जल, शुद्ध भूमि, शुद्ध प्रकाश एवं शुद्ध अन्न यही पंचामृत कहलाता है। जो इन पंचामृतोंका पान करता है वही ब्रह्मचर्यकी रक्षा कर आरोग्य एवं दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकता है।

शुद्ध वायु घने बसेहुये शहरोंमें नहीं वरन् खुले गांव एवं जंगलोंमें ही प्राप्त हो सकती है। हमें चाहिये कि नदी, तालाब एवं झरनोंके किनारे गांव से दूर जंगल एवं बागोंमें और सम्भव हो तो पहाड़ों एवं समुद्रके किनारे भी भ्रमण करें। यदि विवशता वश शहरमें रहना ही पड़े तो सुवह-शाम खुलेमें जाकर अवश्य ही घूमना एवं ५०-६० वार गहरी सांस धीरे-धीरे अंदर भरना और निकालना चाहिये। वीर्यको शक्तिशाली बनानेमें इसका बहुत वड़ा हाथ है क्योंकि वायुसे प्राप्त ओषजन ही रक्त शोधन करता है और उसका प्रभाव वीर्य शोधनपर भी पड़ता है।

मकान खुलेमें बनवाना चाहिये और साथ ही उसमें इस प्रकार रोशनदान बनवाने चाहिये कि चारो ओरसे हवा आ सके।

प्रातःकाल ब्रह्म बेलाकी वायुमें अधिक प्राण (ओषजन) होनेसे ब्रह्मचर्य, स्वास्थ्य, आनन्द, पवित्रता, प्रसन्नता, तेज, बल, सामर्थ्य एवं ओज-कीर्ति की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। उस समय अधिक से अधिक गहरी सांस लेनेका अभ्यास करना चाहिये।

धूप– जीवनमें सूर्य रश्मियोंका वहुत ही अधिक महत्व है। वेदमें इसे "जीवनदाता" कहा गया है। डा० रिकलीने कहा है। "Water is good air is better, but light is the best of all" पानी उत्तम है, वायु उससे उत्तम किंतु धूप सर्वोत्तम है।

नियमित रूपसे प्रातः गर्मियोंमें ५॥-७॥ एवं जाड़ोंमें ७-९ बजे के बीच २०-३० मिनटकी धूप लेनी चाहिये। यदि सम्भव हो तो नंगे बदन वरना हल्का सफेद कपड़ा पहिनकर। धीरे-धीरे धूपमें काम करनेका भी आदी बनना चाहिये।

धूपसे स्नायविक शक्ति सशक्त होती है जिसका प्रभाव वीर्य पर पड़ता ही है अतः यह ब्रह्मचर्य पालनमें विशेष सहायक है। धूप पहिले पीठपर लेनी चाहिये। धूपके सम्बन्धमें वेदमें कहा गया है :-

'यदि जाग्रद यदिस्वप्ने एनांसिय कृयावयम्।
सूर्यो मा तस्मादेन सो विश्वए मामुन्धत्वं हसः॥

स्वप्न और जाग्रतके सब दोषको सूर्य हटाता है। सूर्य प्रकाशमें रहने

वाला व्यक्ति सहिष्णु हो जाता है। जो व्यक्ति सहिष्णु होगा उसके ब्रह्मचर्य पालनमें सहायता मिल सकती है।

धरती-टहलते समय नंगे पैर जमीन अथवा घासपर टहलना चाहिये ताकि धरती माताकी अपूर्व शक्ति भी हमें मिलती जाये।

विचार शक्ति– हमें सदा अपने विचारोंको शुद्ध एवं पवित्र रखना चाहिये। समस्त स्त्रियोंको मातृ भावकी दृष्टिसे देखना चाहिये। हमें लक्ष्मण एवं हनुमानकी तरह अपना चरित्र रखना चाहिये कि उन्हें जगत जननी सीताके चरणोंके अतिरिक्त उनके किसी अवयवका पता ही नहीं। सदा वृद्धा को मां, युवतीको बहन एवं छोटी लड़कीको अपनी कन्या समझनी चाहिये।

इसीके सम्बन्धमें सन्त तुलसीदासजीने कहा है :–

"जो दूसरेके धनको पत्थर एवं दूसरीकी स्त्रीको माताके समान समझे और इतने पर भी यदि उसे स्वर्ग न मिले तो तुलसीदास जवाबदेह हैं।" इसी प्रकार नरसैया भगतने भी कहा है।

सत्संग– सदा चरित्रवान पुरुषोंका साथ करना चाहिये न कि ऐसे जी हुजूरोंकी कि जो हमारे हां में हां मिलाया करें बल्कि ऐसा होना चाहिये कि जो हमारी वास्तविक कमजोरियोंसे हमें सावधान करता रहे। इस सम्बन्धमें कबीर साहबने कहा है :-

"निंदक साथे राखिये, ऊँचो आसन देइ।"

सत्साहित्यका अध्ययन– नित्य नियमित रूपसे महापुरुषोंके चरित्र, धार्मिक एवं आध्यामिक सद्ग्रंथोंका अध्ययन करना चाहिये। इससे सात्विक भावनायें जागृत होकर तामसी भावनाओंका दमन होता है।

अपनेको सदा किसी न किसी काममें लगाये रहना चाहिये और आरामतलब नहीं होना चाहिये क्योंकि आरामतलबको काम रिपु पटक-पटक कर मारता है। यही कारण है कि श्रमिककी अपेक्षा आरामतलब अधिक विषयी होते है क्योंकि कठिन श्रम करनेके बाद उसे विस्तरपर पहुँचते ही नींद आ जाती है और आराम-तलब गहरी निद्राके अभावमें रात भर तारे गिनता रहता है। और उसी बीच वासना जाग्रत होनेपर उसे शांत करनेका प्रयत्न करना है।

नींद– हमें नित्य ७-८ घण्टेकी गहरी नींद आनी चाहिये पर जो लोग सिनेमा, नाटक एवं खेल-तमाशे देखनेमें रात्रि जागरण करते हैं, उनके टूटे-फूटे कोषकी क्षति पूर्ति एवं शरीरसे गंदगी न निकलनेके कारण रक्त उत्तेजित होनेसे वीर्यका भी उत्तेजित एवं दूषित होना स्वभाविक है।

दिनमें कभी भूल कर भी नहीं सोना चाहिये, इससे भी कामोत्तेजना होती है क्योंकि उस समय कफ वृद्धि होती है। यही कारण है कि गरमीके दिनोंमें दिनमें सोनेसे प्रायः स्वप्नदोष अथवा वीर्यपात हो जाता है।

सोने का विस्तर मुलायम नहीं कड़ा होना चाहिये और यदि संभव हो तो चारपाईकी जगह तख्ता होना चाहिये। पर आजकलके विलासी युगमें फोम के गद्दे तथा स्प्रिगदार चारपाई के बिना लोगोंको नींद ही नहीं आती। कोमल, मृदुस्पर्श, तथा गुदगुदी पैदा करनेवाली वस्तु कामोत्तेजक होती है। पेटके बल नहीं सोना चाहिए इससे जननेंद्रियपर दबाव पड़ने एवं सिहरन होनेसे भी कामोत्तेजना होती है। अधिक ओढ़नेसे अधिक गरमी होती है और फलस्वरूप कामोत्तेजना होना स्वभाविक है अतः हलका ओढ़ना चाहिये। जहाँ तक हो सके सूती वस्त्रका ही प्रयोग करना चाहिये।

एक साथ सोना– स्त्री पुरुष अथवा पुरुष-पुरुष एवं स्त्री-स्त्रीको भी एक ही विस्तरपर साथ सटकर नहीं सोना चाहिये। इससे शरीरमें सिहरन पैदा होकर काम रिपु जाग उठता है, इसके सम्बन्ध में मनुस्मृतिमें कहा है:

एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित ।
कामाद्धि स्कन्द यन्रेतो हिनस्ति व्रतमात्मन ॥ ॥२/१८०॥

सदा अकेला सोवे, किसी समय भी वीर्यको न गिरने दे। कामेच्छासे वीर्यको गिराना अपने व्रतको नष्ट कर देता है।

चिंता भय एवं क्रोध– मनको सदा प्रसन्न रखना चाहिए चिंता, भय एवं शोकमें रहनेसे हमारी कर्म एवं ज्ञानेंद्रियां विकसित नहीं हो पाती, जिसका प्रभाव हमारे वीर्यपर भी पड़े विना नहीं रह सकता। जब हम चिन्ता, भय एवं शोक करने हैं तो हमारे शरीर-कोष सिकुड़ एवं टूट–फूट जाते हैं और गंदगीका निष्कासन नहीं हो पाता तो वह विजातीय द्रव्य बनकर तांप एवं उत्तेजना पैदा करता हैं।

ठलुआ जीवनमें प्रभाव– ऐसे लोगोंकी भी कमी नहीं है कि वे केवल नहाने, खाने एवं शौच जानेके लिये ही उठते हैं। उनके मनमें कामोत्तेजनाका होना स्वभाविक है क्योंकि वीर्य, जो व्यायाम एवं आसन प्राणायाम आदि द्वारा शरीरमें रमता है, रम नहीं पाता। इसी प्रकार जो जो अधिक काम करते–करते थक जाते हैं उनमें भी इतनी शक्ति नहीं रह जाती कि वह पैदा हुई गंदगीको बाहर निकाल सकें अतः उनमें भी कामोत्तेजना होना स्वभा–विक है। इसीलिए भगवान कृष्णने युक्ताहार-विहारपर जोर देते हुये कहा है-

नात्यश्नन्तस्तु योगोऽस्ति न चैकान्त श्नन्तः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥ गीता, ६।१७॥

योग न तो वहुत खाने वाले का सिद्ध होता है और न बिल्कुल न खाने वाले का तथा न अति शयन करने वाले स्वभाव वालेका और न अत्यंत जागने जागने वालेका ही सिद्ध होता है।

वस्त्र– सदा सूती ढीला-ढाला एवं झिरझिरा पहनना चाहिए। अधिक वस्त्रोंसे जब हम अपने शरीरको कस लेते हैं तो हमारे रोम कूप प्राण वायु एवं सूर्य रश्मियोंका अपने अंदर शोषण नही कर पाते जिससे रक्त शुद्ध होनेके बदले अशुद्ध ही होता है एवं शरीरमें गरमी पैदा होकर जननेंद्रिय उत्तेजना भी होती है।

सफाई– रोजाना काम में आने वाले अपने कपड़ेको नित्य साफ करके प्रातः सुखाना चाहिए। प्रातः एवं सायंकाल मुंह, दाँत नेत्र आदि समस्त शरीरको विशेषकर गुप्त स्थानोंको ठंडे जलसे साफ करना चाहिये। दाँतोंको किसी पेस्ट अथवा मंजनसे नहीं बल्कि नीम, ववूल मोलश्रीकी दातुन आदि एवं शुद्ध मिट्टीसे करना चाहिये।

ब्रह्मचर्यके लिये आवश्यक नियम– यों तो ऊपर बहुत कुछ बताया जा चुका है पर यहां मैं मनुस्मृतिमें बताये हुये नियमों को दुहरा रहा हूँः–

"ब्रह्मचारी एवं ब्रह्मचारिणीको दारू, माँस, पर स्त्री एवं पुरुषों का संग. जीवकी हिंसा, अंगका मर्दन बिना कारण उपस्थ इंद्रियका स्पर्श आंखोंमें अंजन, बूट, छाता, काम, क्रोध, लोभ, मोह, दंभ, शोक, ईर्ष्या, द्वेष, गान-तान, वाद्य, व्यर्थमें निंदा, मिथ्याभाषण, स्त्रियोंका दर्शन, किसीके अपकार

आदि कुकर्मोंका त्याग करना चाहिये ।"

सारांश

पिछल अध्यायोंमें विस्तार से बताया जा चुका है, पर यहाँ मैं उन नियमोंको संक्षेपमें बतानेका प्रयत्न कर रहा हूँ ताकि वे नियम हमारे मस्तिष्कमें स्थायी रूपसे घर कर जांय और हम उन्हें अपने जीवनमें उतार कर संयमी एवं नियमित बनकर ब्रह्मचर्यके क्षेत्रमें सफलता प्राप्त कर सकें।

१–जल्दी सोने एवं उठनेसे मनुष्य स्वस्थ बुद्धिमान एवं धनवान होता है ।

२–सतत उद्योग करना चाहिए क्योंकि "आलस बड़ासे बड़ा दुश्मन एवं उद्योग बड़ासे बड़ा मित्र है ।"

३–नियमित रूपसे प्रातः वायु एवं धूप सेवन करना चाहिये । साथ ही खुलेमें रहने एवं सोनेका अभ्यास भी करना चाहिये ।

४- सात्विक आहारका ही सेवन करना चाहिये ।

५- किसी भी मादक द्रव्यका सेवन नहीं करना चाहिये ।

६- आध्यात्मिक अभ्यास द्वारा आत्मोन्नतिकी साधना करनी चाहिये ।

७–मलमूत्र त्याग के बाद शीतल जलसे उन गुप्त अंगोंको अवश्य धोना चाहिये ।

८–सोते समय हाथ मुंह, पैर एवं विशेषकर जननेंद्रियको ठंडे जलसे धोना चाहिये ।

९–नियमित व्यायाम, आसन एवं प्राणायाम करना चाहिये ।

१०-सदा ढीला-ढाला हल्का सूती वस्त्र पहिनना चाहिये और एक बारका पहिना हुआ कपड़ा बिना साफ किये पुनः नहीं पहिनना चाहिये ।

११-मनुष्यको सदा अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम् । उदारचरितानाम्,तु वसुधैवकुटुम्बकम्" का व्यवहार करना चाहिये इससे मन उत्तेजित न होकर सदा शांत रहता है ।

१२–स्त्रीको गर्भकालसे वच्चा हो जानेके ५ वर्ष और कमसे कम ३ वर्ष बाद तक माता समझना चाहिये ।

१३–विस्तर मुलायमकी अपेक्षा कुछ ठंडा रहना चाहिये । ठंडाका अर्थ भीगा नहीं ।

१४- लंगोट दिनमें बांधना चाहिये पर रातको सोते समय अवश्य खोल देना चाहिये।

१५- शीतल जलसे ही स्नान करें, गरम जल से नहीं ।

१६- कब्ज कभी भी नहीं रहने देना चाहिये।

१७–कमसे कम सातवें रोज उपवास एवं नवदुर्गामें ९-९ दिनका उपवास, रसाहार या फलाहार तथा एनीमा भी प्रयोग करना चाहिये।

१८–सदाचारियोंका संग करना चाहिये।

१९–कुसंगतिका त्याग करना चाहिये।

२०–मन, वचन एवं कर्मसे ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करना चाहिये।

२१–संकोचन क्रियापर काबू पानेके लिये नित्य प्रातःकाल मूल, उड्डियान एवं जालंधर बंधका अभ्यास करना चाहिये।

२२–रास्तेमें चलते हुये इधर–उधर निगाह न डालकर नीची निगाह करके चलना चाहिये।

२३–आसन-नित्य सिद्धासन अथवा पद्मासनपर बैठकर गायत्री मन्त्र या जो आपका इष्ट मन्त्र हो, का जप तथा सर्वांगासन, हलासन, मत्स्यासन, सर्पासन, शलभासन, धनुरासन, पश्चिमोत्तानासन, अर्धमत्स्येन्द्र एवं शवासन करना चाहिये।

२४–विषयोंकी शांतिके लिये घी, दूधका कम उपयोग करें, अपक्व वनपके फल, अंकुरित अन्न कण एवं हरी सब्जी खाकर रहें तो अत्युत्तम है।

२५–"पांच वर्षतक माताके पास रहना और आठ वर्षकी आयुतक पिताके पास, बादमें ९ वर्षसे अधिकसे अधिक ४८, ४४, ४०, ३६, ३० अथवा कमसे कम २५ वर्षतक पुत्र तथा ९ से २४, ३२, २०, १८ या १६ वर्षकी आयु तक पुत्री गुरुके पास रहकर विद्याध्ययन करे और इसप्रकार पुत्र-पुत्री विद्वान होकर धर्म-अर्थ प्राप्त करें।" पर आजकल ऋषिकुल या गुरुकुलमें सबके लिये जाना सम्भव नहीं है अतः वह समय सुसंस्कृत विद्यालयमें विद्याध्ययन करते हुये घरपर ही सात्विक जीवन बिताना चाहिये।

२६–स्त्री संगका त्याग इतना ही ब्रह्मचर्यका पालन नही है बल्कि तमाम विषयेन्द्रियोंका निरोध ही ब्रह्मचर्य है।

२७–दिनमें कभी नहीं सोना चाहिये।

२८–मिताहार करना चाहिये।

२९–नित्य रातको सोनेके पूर्व डायरीमें अपनी अच्छाई बुराई दोनों लिखनी चाहिये। आत्मचिंतन अनिवार्य है।

३०–प्रातः सायं तो नंगे पैर टहलना ही चाहिये और यदि सम्भव हो तो स्वच्छ खुले स्थानमें सदा रहा जा सकता है। इसमें खड़ाऊँका उपयोग भी हितकारी है।

३१–विषय-वासनामें दोष दृष्टि एवं स्त्रीके प्रति मातृ भाव रखना चाहिये।

३२–यदि संभव हो तो रातमें अन्नके बदलेमें फलाहार करना चाहिये।

३३–तन-मनको एकाग्र करनेका अभ्यास करना चाहिये।

३४–"स्त्रीका रूप सदा निंद्य समझो। स्त्री पर्वत ऐसे निश्चित मनको भी चलायमान कर देती है"–बुद्ध। इसी प्रकार स्त्री भी पर पुरुषको समझे। इसका अर्थ गलत न समझकर यह समझें कि पर नारीको स्त्रीके रूपमें न देखकर माता, बहन एवं बेटीके रूपमें देखना चाहिये इसी प्रकार स्त्री भी पर पुरुषको पिता, भाई एवं पुत्रके रूपमें देखें।

३५–किसी स्त्रीके सामने कभी एकांत में जाओ नहीं जैसाकि बुद्धने कहा है "सौंदर्य मुग्ध मनुष्यका हृदय अंधा होता है और उसका चित्त भ्रमित होता है अतः किसी स्त्रीके सामने कभी मत जाओ।" इसी प्रकार स्त्रीको भी पुरुषके प्रति करना चाहिये।

३६–बुद्धि द्वारा वैराग्यकी साक्षात अनुभूति और उसके द्वारा मनमें विषयोंकी तरफसे शांतिकी स्थापना इन दोनों बातोंके लिये प्रयत्नशील होना चाहिये।

३७–उर्ध्वरेता होनेके लिये विषयोंसे वैराग्य आवश्यक है।

३८-ब्रह्मचारीको दारू, गांजा, भाँग, आदि किसी भी नशीले व्यसन में नहीं पड़ना चाहिये।

१९–जहाँ तक हो सके एकान्त स्थानमें अकेले रहना चाहिये।

४०–स्त्री-पुरुष परस्पर एक दूसरेसे अलग एकांतमें रहें और एकांतमें कभी

एक दूसरेसे न मिलें और यदि ऐसा अवसर ही पड़ जाय तो ॐ का या जो इष्ट मन्त्र हो, जप करते हुये शुद्ध भावसे मिलें।

४१-स्त्री पुरुष परस्पर की हुई क्रीड़ा भूल जायें।

४२-स्त्री पुरुष को एक आसन पर एक साथ नहीं बैठना चाहिये। किंतु हवन आदि में बैठने में कोई हिचक नहीं करनी चाहिये।

४३-स्त्रियों एवं पुरुषोंकी मूर्ति, चित्र आदि जिससे कामेच्छा जाग्रत हो नहीं रखना चाहिये। जैसाकि प्राय: लोग सिनेमाके अभिनेता एवं अभि-नेत्रियों के फोटोका अलबम रखते एवं चित्र कमरोंमें लगाये रखते हैं।

४४-भगवान की मूर्तिका अथवा जो मूर्तिको नहीं मानते व प्रेम-पूर्वक निराकार का ध्यान अथवा जप करें।

४५-सुन्दर आभूषण अथवा कपड़ा पहिनकर शरीर न सजावें।

४६-मन, वचन एवं कर्मसे सत्यका पालन करना चाहिये।

४७-काम क्रोध, भय एवं लोभ को जीतना चाहिये।

४८-वासनात्मक नृत्य नहीं देखना एवं उस प्रकार के वातावरणसे सदा दूर रहना चाहिये। श्री किशोरलाल भाई ने लिखा है:-"जिस विद्यार्थी को श्रृंगार रससे भरी कहानियां, नाटकों, काव्यों चित्रों वगैरहका लाजमी तौर पर अध्ययन करना पड़ता हो, जो विद्यार्थी सिनेमा, नाटकशालामें जाता हो, होटलका खाना खाताहो, नये शादी किये गये और नया भोग भोगने वाले विद्यार्थियों या शिक्षकोंके बीच रहता हो और विलासी वार्तालापमें रचा-पचा रहता हो उसके लिये चंद्रायण व्रत करकेभी वीर्य स्थिर रखना कठिन है (स्त्री पु० म० २३) यही बांत अन्य स्त्री-पुरुषोंके लियेभी लागू होती है।

४९-जब कभी किसी प्रकार की उत्तेजना हो तो तत्काल रीढ़ की ठंडी पट्टी वीस मिनट तक लेनेसे शांत हो जाता है। और अच्छा हो कि १ गिलास ठंडा पानी लें। शीतल जलसे सारे शरीरका स्नानभी उपयोगी है।

५०-घीसे तर, कामेच्छा उत्पन्न करने वाला भोजन न करें और न अति भोजन ही।" जैन धर्म'

५१-अनुचित शब्दका सुनना, अनुचित रूपका देखना, अनुचित गंध का सूंघना एवं अनुचित वस्तुओंका स्मरण नहीं करना चाहिये।

५२- नियमित एवं संयमित जीवन बिताते हुये भी विषय-वासनाका चिंतन नहीं करना चाहिये।

५३-सब इंद्रियोंका निग्रह एवं उन पर काबू करना चाहिए।

५४-उपवासके बाद तुरन्त भरपेट नही खाना चाहिये क्योंकि उससे थोड़ा भी बोझ पड़नेसे वीर्य दोष होकर वीर्यपात हो जाता है, अतः उपवास सदा फल सब्जी अथवा उनके रससे ही तोड़ना चाहिये।

५५-निर्भय मार्ग यह है कि ऐसा कोई उपाय किया जाय जिससे विषय की याद ही न आये। जैसे कि अध्ययन एवं किसी चीजके शोधमें अपनेको लगा देना।

५६-अगर विकार पैदा हो तो उसका शत्रु भाव या मित्र भावसे विचार करनेके बजाय किसी नये ही विचारमें मनको लगानेकी कोशिश करनी चाहिये।

५७-"जिस व्यक्ति या मूर्तिके बारेमें इतना आदर हो कि उसके नजदीक रहनेसे विकार शांत हो, एवं संयमित जीवन बितानेकी प्रेरणा मिलती हो, रहना चाहिये।" किशोरलाल भाई

५८-रोजाना सोते समय यह चिंतन करते हुये सोना चाहिये कि मेरा वीर्य ऊपरकी ओर चढ़ रहा है और उससे मुझमें ओज एवं तेजका संचार हो रहा है ऐसा चिंतन नित्य १५-२० बार तो अवश्य ही करना चाहिये।

५९-गाँधी जीने लिखा है "जब-जब कामेच्छा हो तब तब ठंडे जलसे स्नान करनेसे शरीरमें ही कामरूपी महाग्नि शांति होती है और वह दूसरा रूप पकड़ स्त्री पुरुष दोनोंके लिये उपकारी होगा और उनको सच्चा सुख मिलेगा।"

६०-ब्रह्मचर्य पालनके लिये अपक्वाहार (फल सब्जी, अंकुरित अन्नकण, कंद, मूल, आदि) अनिवार्य हैं।

ब्रह्मचर्य जीवनकी दिनचर्या

१-ईश्वरका चिंतन करते हुये सूर्योदयके २ घंटे पूर्व उठना चाहिये।

२-माथा एवं छातीपर वस्त्र ढककर शांत होकर शौच करना चाहिये।

३–शौचके बाद साफ मिट्टीसे हाथ, पाँव एवं दाँत मलकर ठंडे जलसे धोना चाहिये। इसके बाद परिस्थितिके अनुकूल व्यायाम करना चाहिये।

४–व्यायामके बाद नदी, झरना, स्वच्छ जलाशयमें अथवा ब्रह्ममुहूर्तमें सूर्योदयके एक घंटा पहिले ठंडे जलसे स्नान प्रभु प्रार्थना करनी चाहिये।

५–नाश्ता न करें तो अत्युत्तम है वरना कोई एक ताजा फल २५० ग्रा० या दो चाय चम्मच शहद २५० ग्राम पानी एवं पीली आधा नीबू का रस मिलाकर या २५० मिली. मठा या २५० मिली दूध लेना चाहिये रातमें २५० मिली पानीमें १०-२० ग्राम आँवला भिगो छानकर पीना प्रातः सर्वोत्तम है।

६-११-१२ बजे और यदि किसी दफ्तरमें काम करते हैं तो नाश्ता न लेकर ९-१० बजे पूर्व बनाये भोजनको करना चाहिये :

७–भोजनोपरांत हाथ मुंह ठंडे जलसे धोनेके बाद १०-१५ मिनट हल्के-हल्के टहलना चाहिये।

८–सूर्यास्त (संध्या) के समय स्नान करनेमें अधिक ठंडक लगे तो ठंडी तौलियासे बदन रगड़ लें।

९–रातको सदा सोनेके ३–४ घंटे पूर्व हलका भोजन करें।

१०–ईश्वर या अपने इष्टका स्मरण करते हुये ९-१० बजे रात्रि में सो जाना चाहिये ताकि अंतर्मनमें वही चिंतन बना रहे और विकारी विचार न आने पाये।

११–स्वप्न दोष हो जानेपर जननेन्द्रियको ठंडे जलसे धोना, ईश्वर प्रार्थना करना तथा दूसरे दिन सुबहसे २४ घण्टेका उपवास करना एवं २५० मिली ताजे पानीका एनीमा लेकर आंत साफ करना चाहिये।

वीर्य नाश के कारण

पिछले भागमें वीर्य रक्षाके नियम एवं साधन बतानेका प्रयत्न किया गया है। उसके विपरीत चलना ही वीर्य नाशका कारण है। इनके अतिरिक्त प्राकृतिक अथवा अप्राकृतिक मैथुन द्वारा जब शुक्र मार्ग खुलता है तभी वीर्य का शीघ्र पतन होता है। ऐसा तो प्रायः सभी जानते हैं पर इनके अतिरिक्त भी इसके नाश के अन्य कारण हैं, जिन्हें भी जान लेना आवश्यक है।

कुछ व्यक्तियोंका शरीर भोग न करने एवं उत्तेजना रहित होनेपर भी वीर्य नाश होता रहता है। इसका प्रधान कारण युवक-युवतीके मनमें विवाह आदिकी बात आना और उसीके बारेमें सोचते रहना है। इसप्रकार वीर्य शरीरमें अच्छी तरह न रमनेके कारण स्रवित होना शुरू हो जाता है, और वह भी इसलिये कि २५ वर्षकी आयुके बाद अंडकोषके जीवित शुक्र-कण टूट-टूट कर शुक्र वाहिनी प्रणालियोंमें से होकर शुक्राशयमें प्रविष्ट होते हैं, और अपनी स्वाभाविक गति से पुरुषके जननेंद्रियमें उत्तेजना पैदा करते हैं उस समय मनमें चाहे काम-विचार पैदा हो अथवा न हो पर ऐसे समयमें स्त्री-पुरुष संयोग होने पर वहिःस्राव हानिप्रद न होकर संतानोत्पत्तिमें सहायक होता है। यही कारण है कि २५ वर्षकी आयुमें व्यवहारिक एवं साधारण जीवन के लिए ऋषि, विद्वान, एवं वैज्ञानिकोंने विवाह की अवधि निर्धारित की है। यह स्राव यदि कभी-कभी शरीर स्वस्थ रहते हुये भी होता है और स्वास्थ्यमें किसी प्रकारकी कमीकी अनुभूति हो तो फौरन सावधान होकर उसे दूर करनेका उपाय करना चाहिये। जो इस वेगको सहन करने की क्षमता रखते हैं वे धन्य है। जैसाकि गीताके ॥ अ० ५ श्लो० २३ ॥ से स्पष्ट है:—

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरबिमोक्षणात ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं संयुक्तं स सुखी नरः ॥

शरीरसे बाहर निकले, उसके पहिले ही जो काम क्रोधके वेगको शरीरमें ही सहन करनेकी शक्ति रखता है, वह पुरुष योगी है और वही सुखी होता है।

साधारणतः जब वीर्य पतला हो जाता है तो बिना किसी उत्तेजना के भी नष्ट होता रहता है जिसे आप प्रमेह कहते हैं।

गलत आहार–विहार एवं दूषित वातावरणमें रहनेपर मनुष्य मान–सिकरूपसे उत्तेजनाका शिकार हो जाता है और उसके वीर्यमें खलबली मच जाती है। उस समय वीर्य अपना स्थान छोड़ देता है और फिर तो वह विजातीय द्रव्य होकर बाहर निकलकर ही रहता है और किसी कारणवश यदि उस समय रुक भी गया तो पेशाबमें मिलकर अथवा पेशाब के पहिले या बादमें आ जाता है। जिससे पेशाब का गंदला हो जाता है अथवा

स्वप्नदोषमें निकल पड़ता है।

दूसरे प्रकारके वे लोग हैं जिन्होंने जानबूझकर शारीरिक संबंध करके अथवा यों ही प्रकृतिके नियमोंको तोड़कर वीर्य नाश किया है। इस प्रकार इसे हम अप्राकृतिक हस्त तथा गुदा मैथुन आदि एवं अति मैथुन में विभाजित कर सकते हैं।

हस्तमैथुन क्या है ?-इस नामसे तो सम्भवतः अधिकांश युवक परिचित ही होंगे। यह ऐसा महान् घातक शत्रु है कि इसने केवल शारीरिक दृष्टिसे ही नहीं बल्कि मानसिक, नैतिक एवं अध्यात्मिक दृष्टिसे इस प्रकार हमारा पतन किया है कि हम किसीसे आंख से आंख मिलाकर बात करनेके बदले सदा नीची निगाह किये रहते हैं एवं वक्ष ऊँचा करके खड़े होनेमें झेंपते हैं। इसके संबंधमें एक वैद्य ने कहा है "जिसे अपना नाशकर जीवित मुर्दा बनना हो, सुन्दरता, लावण्य एवं नैतिकताका नाश करना हो, रोगी आलसी एवं कुरूप बनना हो तो हस्त मैथुन ऐसा अपने हाथ अपना नाश करनेवाला कोई रामबाण नहीं है।"

हस्तमैथुन क्यों ?–अप्राकृतिक वातावरण ही छोटी आयुमें युवक–युवतीके जीवनमें अशांति उत्पन्न कर देता है। फलस्वरूप उनके मनमें विकारी विचार उठते हैं पर उसे शांत करनेमें असमर्थ रहते हैं क्योंकि उस समय तक वे अविवाहित रहते हैं। जब उस युवक पर यह दानवी शक्ति विजयी हो जाती है तो वह इस घातक कुटेव हस्तमैथुन तथा अन्य पैशाचिक कृत्योंमें फंसकर अपने हाथों अपनी कब्र खोदता है और उस क्षणिक तृप्तिके लिये वह अपने जीवनसे सुख, शांति एवं आनन्दको सदाके लिये विदा करने के पथ पर अग्रसर होता है।

उस समय केवल हस्तमैथुन ही नहीं, अनेक अव्यवहारिक एवं अप्राकृतिक साधनोंको भी अपनाता है। अब आपने समझा होगा कि अप्राकृतिक जीवन द्वारा पैदा हुये उस पाशविक इच्छाकी शांतिके लिये ही अनेकों हस्त मैथुनके लतके शिकार होते हैं और इस ओर अग्रसर होकर असमयमें ही कालके गालमें समा जाते हैं, डा० केलाग ने लिखा है 'मेरी सम्मतिमें मानव समाजको प्लेग, युद्ध, चेचक तथा इसी प्रकारके अन्य रोगोंसे इतना

नुकसान नहीं पहुँचा जितना हस्त मैथुन तथा इसी प्रकारके अन्य घृणित कार्यों से।"

यही कारण है कि छोटी उम्रमें ही कृत्रिम उपायों द्वारा वाह्यिःस्राव होने लगता है और हमारे युवक-युवतियाँ फूलने फलनेकी अवस्थाको प्राप्त होनेको कौन कहे, कली अवस्थामें ही मुरझा जाती हैं।

हस्थमैथुन किस आयुमें ? किशोरावस्थामें प्रवेश करते ही हमारे अन्दर नये-नये परिवर्तन होने शुरू हो जाते हैं और उसी समय मनमें नये विचार एवं जोश का प्रादुर्भाव होता है। यह उस समय आप पर एवं आपके इर्द गिर्द के वातावरणपर निर्भर करता है कि आप उन्हें चाहे रचनात्मक अथवा विध्वंसात्मक कार्योंमें लगायें।

इस अवस्थामें चीजोंको समझने-सोचनेकी क्षमता विकसित होती है। और अप्राकृतिक वातावरणमें रहने एवं उसी तरहकी चर्चा सुननेके कारण हमारे अंदर उसी तरहके भाव पैदा होते हैं। अतः १५ से १८ वर्षकी आयु में ही लड़का एवं १२-१४ वर्षकी आयुमें लड़की इस कुटेवका शिकार होते हैं। यह कुटेव न तो अमीर देखता है और न गरीव, पर हाँ, यह अवश्य है कि गरीवोंकी अपेक्षा अमीरोंमें यह लत अधिक तीव्र गतिसे प्रवेश करती है क्योंकि उन्हें प्रायः ऐशो आरामका जीवन एवं उत्तेजक अप्राकृतिक एवं गरिष्ठ आहार मिलता है। अज्ञानताके कारण विद्यार्थियों एवं अविवाहितोंमें इसका अधिक प्रसार है और आदत पड़ जानेपर तो उस व्यक्तिके प्रयासके विना भी हाथ वहाँ पहुँच जाता है, जैसे किसी इन्द्रियको लंवे समयतक एक ही तरहके काम का अभ्यास कराया जाय, तो उसे देखे जा सकनेवाले प्रयासके विना भी धीरे-धीरे उसी तरहके काम करने की आदत हो जाती है, जैसे टाइपिस्ट और गवैयोंका हाथ। इस संवंधमें किशोर लाल भाईने लिखा है:-

"इसी तरह लंवे समय तक अब्रह्मचर्यके रास्ते लगे हुए विद्यार्थीकी विषयेंद्रिय जाग्रत हो जानेकी ऐसी आदत पड़ जाती है कि स्पष्ट प्रयासके बिना ही नहीं, वल्कि इच्छाके खिलाफ और बेबसीसे उसके ब्रह्मचर्यमें दोष पैदा होते ही रहते हैं। ऐसा भी दुखद अनुभव है कि सद्भावसे सुनी हुई

ब्रह्मचर्यकी महिमा भी उसमें विन चाहा वीर्य दोष पैदा करती है।"

आजके युगमें इस लतसे लोग इतना सहम गये हैं कि इससे छुटकारा पाना कठिन है पर वास्तवमें यदि धैर्य एवं संयमसे काम किया जाय तो बड़ी से बड़ी बुराइयोंसे भी आसानीसे छुटकारा मिल सकता है।

जब रोगी इससे भयभीत हो जाता है तो उसके जीवनमें निराशा, हतोत्साह, एवं अधीरताके अंधकारके सिवा आशारूपी प्रकाश दिखाई ही नहीं देता। पर वास्तवमें यह इतनी भयंकर चीज नहीं है, जिससे छुटकारा न मिल सके। भयभीत होनेसे तो दिन प्रति दिन हमारी इच्छा एवं धारणा शक्ति नष्ट होती चली जाती है और अंतमें विवश होकर लोग इसके सामने घुटने टेक देते हैं। पर यदि लत लगते ही अथवा कुछ समय बाद ही हम सावधान होकर इससे छुटकारा पानेका दृढ़ संकल्प कर लें तो निश्चय ही किसी न किसी दिन मुक्ति अवश्य ही मिलेगी पर पुनः आप एक बार स्मरण कर लें कि लगन एवं दृढ़ निश्चय नितांत अनिवार्य है।

यह लत कैसे लगती है ?– यों तो इस लतके अनेक छोटे–मोटे कारण हो सकते हैं। पर मुख्यतः दो कारण हैं। भौतिक एवं मानसिक। भौतिक के अंदर भौतिक वस्तुयें, यानी शारीरिक कारण है और मानसिक कारणमें मन प्रधान है।

भौतिक कारण– पुरुषके अंदर बहिःस्राव शुरू होनेपर कामोत्तेजना प्रारम्भ होती है पर प्राकृतिक जीवन बितानेपर यह अवस्था २५ वर्षकी आयु के बाद ही आती है किन्तु अप्राकृतिक जीवनमें इससे पूर्व ही रति आनन्दकी इच्छा होती है। पर जब विवाहित स्त्री घरमें नहीं रहती एवं संतुलित आहार-विहार और नैष्ठिक ब्रह्मचर्यके प्रति दृढ़ संकल्प भी नही होता तो उत्तेजनाको शांत करनेके लिये अप्राकृतिक साधनोंका सहारा ढूंढ़ना पड़ता है, यही नहीं कि हस्तमैथुन ही करें बल्कि वहींसे अन्य अप्राकृतिक मैथुन, वेश्या गमन तथा पर स्त्रियों पर कुदृष्टि डालना शुरू हो जाता है। विवाह करके नियमित जीवन बिताते हुये संभोग करनेसे वह हानि नहीं होती जो इन अप्राकृतिक कुटेवोंसे क्योंकि पति–पत्नीके प्रेमसे सने भय रहित आलिंगन एक प्रकारकी विद्युत शक्ति पैदा होती है जो सिहरन पैदा करके

दोनोंके स्नायु तंतुओंकी क्षति पूर्ति एवं उन्हें शक्ति प्रदान करती है पर यह सब मर्यादा एवं संयमित जीवनके अन्दर ही होना चाहिए वरना क्षति पूर्ति समझकर पाठक इसीको साधन न बना लें, नही तो वही कहावत चरितार्थ होगी कि–

"आये थे हरि भजननको, ओटन लगे कपास"

जननेंद्रियके अग्रभागकी त्वचा पीछे हटाकर उसकी पानीसे सफाई न करने पर शिश्न मुंडपर मैल जम जानेपर उसमें खुजलाहट एवं उत्तेजना होने से हाथ अपने आप वहां पहुँच जाता है।

यही कारण है कि गुरुकुल अथवा ऋषिकुलमें जव बच्चे भरती किये जाते हैं तो उन्हें यह आदेश दिया जाता है कि हाथसे जननेंद्रिय स्पर्श न करना पर आजके युवक–युवतियाँ ऐसे उपदेशकी हंसी उड़ाते हैं और फल–स्वरूप इस घातक कुटेवका शिकार होना पड़ता है।

जननेंद्रिय पर यकायक दबाव पड़नेसे भी यह वुरी लत लग जाती है अपने अनुभव एवं इसके अनेक रोगियोंकी परीक्षा करनेके वाद डा० एलबर्टने लिखा है-"घोड़े पर चढ़ना, सिलाईको पैरोंसे चलाना, बाइसिकिल दौड़ाना तथा रेलगाड़ीकी सवारीसे भी उत्तेजना हो जाती है और यह उत्तेजना ही आगे चलकर मनुष्यको हस्त मैथुनकी ओर अग्रसर कर देती है।" इस कुटेववाला मनुष्य बहुत ही वेशर्म हो जाता है। यहां तक कि अपने माता–पिता, भाई, बन्धु एवं इष्ट मित्रों तकके सामने करते नहीं सकुचाता। शोकस्थल पर भी यह साथ नहीं छोड़ता जैसाकि एक अभ्यासीके पत्रके उद्धरणसे मालूम हो जायेगाः–

"मैं अपने ५ वर्षके पुत्रको गंगा–प्रवाह करने ले गया। वहाँ भी हस्त मैथुनने मेरा पीछा नहीं छोड़ा और लोगोंके सामने ही इस पैशाचिक कृत्य को करना शुरू कर दिया। मानो मेरे शर्म हयाका खातमा हो चला।"

बहुतसे लड़कोंकी आदतकी पेटके बल लेटकर पढ़नेकी होती है। उस समय जननेंद्रियपर दबाव पड़नेसे उसमें सहज ही उत्तेजना होती है और हाथ अपने आप वहाँ पहुँच जाता है। इसी प्रकार पैजामा, पतलूनके नीचे लंगोट न पहिनने के कारण जननेंद्रियके सटे रहने एवं बार-बार लगते रहने

से उत्तेजना पैदा होती है और उसे स्पर्श करनेकी इच्छा होती है।

प्रायः देखा जाता है कि नौकर जब पतलूनधारी बालकको पेशाब कराता है तो उसकी जननेंद्रियोंको बाहर निकालकर केवल पेशाब ही नहीं कराता बल्कि उससे खिलवाड़ करता है और चूमता एवं हांथसे सुहराता है यही हरकतें अंतमें बच्चेको हस्त मैथुन करनेके लिए विवश कर देती है। अतः अपनी भारतीय संस्कृतिके अनुसार ९ से १४ वर्ष तकके लड़के-लड़कियोंको ढीला एवं खुला कपड़ा पहिनना चाहिये।

बचपनमें दाइयां अक्सर जननेंद्रियके अग्रभागकी त्वचाको हटाकर उसमें तेल डालकर फूंकती एवं चूमती हैं। इससे भी वहां सिहरन होकर उत्तेजना होती है यह क्रिया उस घातक कुटेवकी ओर अग्रसर होनेमें सहायक अथवा यों कहा जाय कि पहला कदम होता है।

पुष्पकलीकी तरह कोमल अनेकों वयस्कके वसंतमय यौवनको उनके नौकर हर लेते हैं। जब कभी किसी कारणवश बच्चा रोता अथवा चीखता है तो दाइयाँ उसे चुप करानेके लिये उसके गुप्तेन्द्रियपर हलकी—हलकी थपकी लगाकर चुप कराती हैं ताकि बच्चेका ध्यान उधरसे हटकर उससे उत्पन्न सिहरनके आनन्दकी ओर आकर्षित हो जाय। नौकरों की गंदी बातों को सुनकर भी बच्चे में कामुकता का प्रवेश होता है इस सम्बन्धमें इलिसने लिखा है:—

"जब मैं १० वर्षका हुआ तो अपने घरके गाड़ीवान से बहुत कुछ सीखा। १२ वर्षकी आयुमें अपने पिताजीके चपरासीसे भी इस तरहकी कामुकताकी बातें करता था और अंतमें हस्तमैथुन करने लगा। हस्तमैथुनके बाद कभी-कभी जननेंद्रिय और कभी अंडकोषोंमें दर्द होता था और उसके बाद मुझे स्वप्नदोष होने लगा।"

यही नहीं बल्कि बहुत सी नौकरानियां भी ऐसी पाई गई हैं कि जो अपनी अज्ञानता एवं कौतूहलवश बच्चोंके गुप्त अंगसे खेलती हैं। और नवघड़ के समान बच्चेके हृदय पटलपर वासनामय तूलिकासे रंग चढ़ाती हैं। यद दशा विशेषकर उन बच्चों की होती है जिनकी मातायें पालन-पोषणसे होने वाली झंझटोंसे बचनेके लिये बच्चा होते ही उनके जीवनको दाइयोंके

हाथोंमें सौंप देती हैं। अतः बच्चोंके पालन-पोषणकी जिम्मेदारी नौकर नौकरानियोंके सिपुर्द नहीं करनी चाहिये और यदि करें भी तो नौकर चरित्रवान एवं उस कुटुम्ब तथा बच्चेका शुभ चिंतक होना चाहिये।

नौकर नौकरानियोंकी बात तो पराये की है पर अनेक माता-पिता भी अनजान वश या प्यार वश बच्चेके गुप्तांगसे खिलवाड़ करते हैं और खुश होते हैं। पर बच्चेके भविष्यको वह भूल जाते हैं कि यह सब क्रियायें उस आत्मघाती हस्तमैथुनकी ओर अग्रसर करनेवाली हैं।

इस कुचेवका शिकार हो जानेपर विद्यार्थी अध्यापकके सामने ही अपनी कब्र खोदने लगता है। जहाँ देखिये वहाँ यह शैतान अपना कब्जा जमाये हुये है जैसे कहावत है "No where is free from devil" कोई जगह शैतानसे खाली नहीं है।

स्कूलमें भरतीके समय उस बच्चेकी भावना कितनी ही शुद्ध क्यों न हो पर वहाँके वातावरणमें रहते हुये उससे छुटकारा पा सकना कठिन ही नहीं असंभव दिखाई देता है। हाँ, कुछ छुटकारा पा भी जाते हैं पर वास्तव में उनके माँ-बाप एवं अध्यापक धन्य हैं।

पाठक सोचेंगे कि लेखकने केवल अपनी मनगढ़ी बातों को कुटेवका कारण बता दिया पर वास्तवमें इस बातकी पुष्टि अनेकोंने की है। श्री हेवलाक इलिस साहबने केस हिस्ट्रीमें लिखा है "१० वर्षकी आयुमें जब मैं स्कूलमें भरती हुआ तो स्कूलके गन्दे वातावरणमें प्रचलित कुचेष्टाओंकी बातचीत मेरे कानमें पड़ी मैंने भी इसमें भाग लेना शुरू किया और शीघ्र ही हस्तमैथुनका शिकार हो गया। यद्यपि आदत से छुटकारा हो गया फिर भी इस छोटी ही आयुमें इस घातक रोगका शिकार होनेसेमैं अनेक बीमारियोंका शिकार हो गया।"

जैंसाकि पहिले बताया जा चुका है इसका अभ्यास हो जानेपर बिना प्रयासके भी टाइपिस्टकी तरह हाथ वहाँ पहुँच जाता है उसी प्रकार चेतन अवस्थामें इस आदतको छोड़ देने पर भी अचेतन अवस्था में मनुष्य इसका शिकार हो जाता है अतः इस आदतसे छुटकारा पानेके बाद भी चेतन-अचेतन दोनों अवस्था में अधिक सावधानी बरतनी चाहिये जैसाकि एक भुक्त

भोगीने लिखा है:-

"जहाँ तक मेरी जाग्रत चेतनाका संबंध था। मैं इस आदतसे छूट चुका था, काम वासना चाहे कितनी ही प्रबल क्यों न होती, मैं उसके वशीभूत न होता था पर एक रात मैंने देखा कि सोने तथा जागनेके बीचकी अवस्थामें जब मनुष्य अर्धनिद्रित होता है, जब चेतना पूरी तरह चैतन्य नहीं होती, मैं इस आदतका शिकार हो रहा था। अंतमें मैं अपने आपको इस प्रकार बाँधकर सोने लगा जिससे उलटा न हुआ जा सके और इस उपायसे मुझे इस बुरी लतसे छुटकारा पानेमें बहुत कुछ सहायता मिली।"

इसी प्रकार अनेक रोगियोंके आये हुये पत्रोंमें से थोड़ा-थोड़ा अंश पाठकके समझनेकी सुविधाके लिये दे रहा हूँ:-

"मेरी हस्तमैथुनकी इच्छा छूट चुकी है पर जबमैं निद्रावस्थामें होता हूँ तो हाथ अपने आप वहाँ पहुँच जाता है।"

"जब मैं सातवीं कक्षामें पढ़ रहा था तो पासमें बैठने वाले एक लड़केने हस्तमैथुन करके उसकी प्रशंसाकी कि इस क्रियामें बहुत ही आनन्द आता है फिर तो मैं भी उस क्षणिक आनन्द एवं स्थायी पतनका रसास्वादन करने लगा।"

"एक दिन मैंने..............हस्तमैथुन करते देखा तो यकायक मेरे मनमें आया कि यह कोई अच्छी क्रिया है फिर तो उसी समयसे मैंने भी करना शुरू कर दिया।"

कालेजोंमें रेंगिंग (Raping) परम्परा भी हस्तमैथुनका विशेष कारण है।

मानसिक कारण- बालक एवं बालिकाओंकी प्रारम्भिक अवस्थामें मनका उतना हाथ नहीं होता जितना कि शरीरका क्योंकि उस समय उसका मानसिक विकास नहीं के समान होता है पर समय पाकर शारीरिक अवस्था का प्रभाव मन पर पड़े बिना नहीं रह सकता दोनोंका चोली दामनका साथ है। कभी-कभी तो मनके बिनाभी हस्तमैथुन हो जाता है। क्योंकि यह शारीरिक क्रियाके ही अंतर्गत है पर यह अवस्था तो बच्चोंमें ही हो सकती है जवानोंमें नहीं। वह तो तन-मन दोनोंके संयोगसे ऐसा करता है।

इस युगमें शरीरसे कम पर बुरी कल्पनाओंके कारण लड़के-लड़कियाँ अपनेको अधिक विनाश की ओर ले जा रही हैं। पहले भावना एवं कल्पना मनमें स्थान कर लेती हैं तब शरीर उसके अनुसार कार्य करता है। सिनेमा थियेटर अथवा नाच घरोंमें जानेपर इस प्रकारके भाव उनके मनमें उठते हैं और ऐसे वातावरण में रहते हुये वे इसका शिकार होनेसे अपने को बचा नहीं सकते। यही नहीं कामोत्तेजक साहित्यका अवलोकन करनेका भी बहुत प्रभाव पड़ता है। जैसा कि नरहरि भाईने "सयानी कन्याओं से" लिखा है—

"अपने शारीरिक सौंदर्यके मिथ्याभिमानमें फंसकर कुछ कन्यायें यह सोचने लगती हैं किसी तरह अनेक नवयुवक उनकी ओर आकर्षित हों फलतः वह वैसे नवयुवकके साथ स्वतन्त्रतापूर्वक बातचीत करनेका अवसर खड़े करके उन्हें अपनी ओर आकर्षित करके उत्तेजित करती है।" इस प्रकार के अभिनय सिनेमा एवं नाटकोंमें नित्य ही देखनेको मिलते हैं।

युवक जब युवतियोंको क्रीम पाउडर आदिसे शृंगार करके कालेज, स्कूल या बाजार, अथवा सड़कों पर या किसी पार्क में इधर उधर जाते हुये देखता है तो उसका उनकी ओर आकर्षित होना स्वाभाविक है और जब वह यह समझ लेता है कि अमुक लड़की कुमारी है तो उससे मिलने एवं मिल-कर बात करनेका प्रयत्न करता है। इसी प्रकार लड़कोंको देखकर लड़कियों के मनमें भी ऐसी भावना जाग्रत होना स्वभाविक है, पर स्त्रियोंमें अपनी शील, लज्जाका अधिक ध्यान होने के कारण वह अधिक संकोच करती हैं। एक पत्रके उद्धारणसे आपको जानकारी होगी:—

"७-८ वर्षकी उम्रमें मेरे मन, वाणी तथा काममें किसी प्रकारकी अपवित्रता लेश-मात्र भी न थी। पर स्कूलमें जाते ही मेरे हृदयमें उन भावों का बीज बोया गया। अपनेही साथ के एक लड़केकी ओर मेरा खास झुकाव होने लगा। वह मेरी नजरोंमें बड़ा रूपवान था। उसे स्पर्श करने एवं सदा देखनेकी इच्छा होती थी।"

चिंता—कुविचारोंका बुरा प्रभाव तो पड़ता ही है, पर चिंताका भी हम पर बहुत घातक प्रभाव पड़ता है। जब मनुष्य चिंता ग्रस्त रहता है तो

उसके तन-मनपर एक बोझ सा लदा रहता है और उस बोझको उतारने अथवा हल्का करनेके लिये जब उसके पासमें ज्ञान-भंडार, या सत्संग अथवा सत्साहित्यका सहारा नहीं होता तो ऐसे कामोंकी ओर अग्रसर होता है।

गुदा मैथुनका कुप्रभाव—हस्तमैथुनसे किसी प्रकार भी कम नहीं है दोनों अप्राकृतिक हैं। इस लत वालेकी जननेन्द्रिय बहुत ही शिथिल पड़ जाती है एवं उसमें वीर्य धारण शक्ति उत्तरोत्तर क्षीण होती चली जाती है अतः वीर्य पात एवं स्वप्न दोष आदि अनेक रोगोंके शिकार हो जाते हैं। जननेन्द्रिय टेढ़ी हो जाती है और शिराओंमें रक्त इकट्ठा हो जानेसे नीलापन आ जाता है। पेशाबकी धार सीधी न होकर तिरछी होती होती है।

यह उनकी नहीं उनके संरक्षक मां-बापकी भी गलती है कि जो उन्हें अप्राकृतिक आहारपर रखते हैं और बच्चोंको उसी तरहके खाद्योंको खानेके लिये पैसा देकर उन्हें चटोरा बनाते हैं और बादमें जब वे किसी कारणवश उनके मांगको पूरा नहीं कर पाते तो विवश होकर साथके अन्य चरित्रहीन लड़कोंके एवं समाजके अन्य दूषित तत्वके हाथोंका शिकार होते हैं।

मां-बापका यह कर्तव्य है कि बच्चोंका पालन-पोषण तथा उनकी देखशाल बहुत ही सावधानीसे करते रहें। बच्चे जितने ही संयमी होंगे उतने ही इन दुष्कर्मोंसे दूर रहेंगे।

अति मैथुन

अति रूपेण ववै सीता, अति गवण रावणऽ।
अति दानाद् वलिर्बद्ध ह्यति सर्वत्र वर्जयेत् ॥ चाणक्य

आधुनिक सभ्यता एवं विलासिताके युगमें अति मैथुनकी प्रथा जोरोंसे चल पड़ी है। जो जितने ही अधिक बार मैथुन करता है वह अपनेको उतना ही बड़ा बहादुर समझता है। इस कार्य सम्पादनके लिए नवजवान ही नहीं बल्कि अधिक आयु वाले भी अनेक प्रकारकी औषधियोंका सेवन करते हैं पर वे भूल जाते हैं कि अति सर्वत्र वर्जयेत्। यह बहादुरी नहीं बल्कि कायरता एवं पतनका मार्ग तैयार करना है क्योंकि जब पुरुषार्थ, कांति एवं

ओज उत्पादक वीर्यका नाश ही हो रहा है तो बहादुरी कहांसे आ सकती है ? वह तो केवल क्षणिक उत्तेजना है। अति मैथुनसे भी प्रायः वही हानियाँ होती हैं जो हस्तमैथुन आदिसे।

ऋषि, मुनियों एवं धर्म गुरुओंने मैथुनके सम्बन्धमें बड़ा कड़ा अनुशासन रक्खा है कि केवल संतानोत्पत्तिके लिये ही करना चाहिये।

सुकरात द्वारा अपने एक शिष्यको दिये गये प्रश्नोत्तरसे मालूम हो जायेगा कि असंयमित मैथुन कितना विनाशकारी है।

शिष्य–स्त्री प्रसंग कितने दिनमें होना चाहिए ?

सुकरात–जीवनमें एक बार।

शिष्य–यदि इससे तृप्ति न हो ?

सुकरात-सालमें एक बार।

शिष्य–इतनेसे भी मन न माने ?

सुकरात–महीनेमें एक बार।

शिष्य–यदि इससे भी तृप्ति न हो ?

सुकरात–हर पन्द्रहवें रोज।

शिष्य– इससे भी तृप्ति न हो ?

सुकरात–तो फिर अपनी अन्त्येष्टि क्रियाके लिए सब सामान घरमें लाकर रख लेना फिर जब मनमें आये करो, क्योंकि न मालूम कब तुम्हारा प्राण पखेरू उड़ जाय जैसाकि कमजोर व्यक्तियोंको मैथुनके बाद मरा हुआ भी पाया गया है।

उपरोक्त उदाहरणसे तो स्पष्ट ही है कि अति मैथुनसे मृत्यु तक हो सकती है तो छोटे–मोटे रोगोंकी चर्चा ही क्या ?

हाय रे विलासी युग ! नित्य को कौन कहे रात दिनमें कई बार मैथुन करते हैं और स्त्री-पुरुष का सोना एक फैशन सा हो गया है। इस कुप्रथासे अनेक रोगोंके साथ व्रीर्यपात, स्वप्नदोष एवं अंतमें एकत्रित कोष समाप्त हो जाने पर नपुंसकताका भी शिकार होना अवश्यम्भावी है। लोगों की धारणा है कि भोगके बाद ही गहरी नींद आती है पर वह भूल जाते हैं कि वह नींद नहीं थकान होती है। महात्मा गांधीने इस संबंधमें लिखा है-

"स्त्री पुरुष अलग-अलग बिछौने ही न रखें बल्कि अलग-अलग कमरेमें सोयें।"

प्रत्येक व्यक्तिको गांधीजीके इस वाक्यको हृदय पटलपर लिख लेना चाहिए, तभी हम इस कुपरिणामसे बच सकेंगे। यों तो आजके मां-बाप, भाई एवं भाभी, स्त्री पुरुषको एक ही कमरेमें एक ही साथ सोनेके लिये प्रेरित करते हैं और शादी होनेके बाद उनका कमरा तो अलगकर ही दिया जाता है एवं उसका फल हमारा गिरा हुआ स्वास्थ्य है। श्री किशोरलाल भाईने लिखा है-

"इस तरह व्ययके वेगसे उत्पत्तिका वेग जुड़ा हुआ है। जो बार-बार विषय भोगका सेवन करते हैं या दूसरी तरहसे शुक्रका नाश होने देते हैं उनमें शुक्र उत्पत्तिकी क्रिया भी तेजीसे होती है यानी काम विकार भी बार-बार उठता है।"

"यदि शुक्रका लगातार व्यय होता रहे, तो शुरूमें तो उतनी ही तेजी से उसकी उत्पत्ति होती मालूम होगी लेकिन कुछ समयके बाद पता चलेगा कि वह शरीरके दूसरे अंशोंको नुकसान पहुँचाकर ही होती है और अंतमें उसकी उत्पत्ति जरूर घट जाती है" (स्त्री०पु०म० १८३)

पर इस प्रतिक्रियाको लोग जब गलत तरहसे समझ लेते हैं तो एक बार मैथुन करनेपर इच्छा और तीव्र हो जाती है तो कहते हैं कि कामशक्ति पहलेसे अधिक तेजीके साथ पतनकी ओर ले जानेवाली ही होती है।

कुटेवोंसे होनेवाले फल

वीर्य नाशके कारण जान लेनेके बाद उसका परिणाम भी जान लेना आवश्यक है ताकि हम उस परिणामको सामने रखते हुये होनेवाली बुराइयों से बचनेका सतत प्रयत्न करें।

शरीरपर पड़नेवाले प्रभाव

पिछले अध्यायोंमें शारीरिक एवं मानसिक पतनके कारणों पर प्रकाश डाला गया है। अब यहाँ यह बतानेका प्रयत्न किया जायगा कि उसका तन-मनपर क्या प्रभाव पड़ता है। प्रकृति इस सम्बन्धमें क्षमा करनेवाली नहीं है

अतः वीर्यनाश करने वालोंको अधिक दंड देती है ।

तन–वीर्यनाशका सारे शरीरपर प्रभाव तो पड़ता ही है पर जननेंद्रिय पर विशेष रूपसे । वीर्य रक्तका सत्व है और वीर्य नाशसे रक्त कम होने लगता है अतः वीर्य नष्ट होनेसे वीर्य वाहिनियोंमें शिथिलता एवं निष्क्रियता आ जाने के कारण उसका वीर्य अच्छी तरह खाली न होनेसे वीर्य उसमें पड़ा पड़ा जलन, उत्तेजना एवं खुजलाहट पैदा करता है क्योंकि अपने स्थानसे च्युत हुआ वीर्य तो विजातीय द्रव्य होकर किसी न किसी तरह बह निकलना ही चाहता है । इससे पेशाबमें चिनक, बार–बार पेशाब जानेकी इच्छा पर खुलकर पेशाव न होना और धीरे धीरे मूत्रल मधुमेह भी हो जाता है और जलनकी मात्रा अधिक हो जानेपर सूजाकका भी रूप हो सकता है ।

२–जननेंद्रियमें उत्तेजना बनी रहती है । विस्तरपर सोते ही वीर्यपात अथवा स्वप्नदोष हो जाता है और कभी–कभी तो दिनमें भी !

३–यह क्रम जारी रहनेपर कुछ दिनों बाद जननेंद्रिय इतनी शिथिल हो जाती है कि बार-बार चाहनेपर भी उत्तेजना नहीं होती ।

४–पेशाब एवं शौचके समय जरा भी जोर लगानेसे एवं कभी-कभी यों भी वीर्य निकल पड़ता है, वीर्यमें अधिक पतलापन एवं दुर्बलता आ जाने पर तो जोर लगानेकी भी जरूरत नहीं पड़ती ।

५–अंडकोषसे शुक्रकण जब नष्ट हो जाते हैं और वीर्य पतला हो जाता है तो उसका सिकुड़न एवं कसाव समाप्त होकर उसमें लटकन, ढीलापन एवं दर्द शुरू हो जाता है और क्रमशः उसमें सूजन भी आ जाती है ।

६–मनुष्यकी संतानोत्पादक शक्ति क्षीण हो जाती है और फिर हजार प्रयत्न करनेपर भी पुत्ररत्नके लिए जीवन भर तरसना पड़ता है और अंतमें नपुंसकताका भी शिकार होकर मनुष्य अपने सुखी जीवनके लिये रोता है ।

७–जिन बालोंमें मनुष्य नित्य तेल डालता एवं कंघा करता है और जो नारीका श्रृंगार भी है वही असमयमें ही झड़ने एवं सफेद होने लगते हैं और फिर तो सिर सफेद एवं गंजा ही गंजा नजर आता है ।

८–वीर्य रक्षाकी बदौलत जिन आँखोंमें तेज एवं गंभीरता होनी चाहिये वह शर्मायी हुई आँखें अपने नीचे कलंककी कालिमा लगाये अंदर

की ओर धंसी हुई, तेज एवं ओज हीन होती हैं और शर्मांती भी हैं जैसाकि श्री किशोरलाल भाईने स्त्री पु०म० पृ०१८५ में लिखा है:–

"बीमार या बूढ़ा पुरुष नवजवानकी तरह दूसरे कर्मोंमें शरीक न हो सकनेके लिये शर्मिन्दा नहीं होता, पर पुरुषत्वकी कमी आ जानेसे शरमाने लगतां है। यह बताता है कि ब्रह्मचर्यके बारेमें चाहे जितना कहा या लिखा गया हो, फिर भी पुरुष वीर्यपातसे डरता नहीं, उसके पूर्व चिन्होंसे भी नहीं डरता, लेकिन कुछ हदतक उसके निरर्थक और इच्छाके खिलाफ नाश से और ज्यादातर उसके बाद आनेवाली ग्लानिसे और अशक्तिसे डरता है।"

वीर्यनाशसे जब स्नायुविक दुर्बलता आती है तो स्मरणशक्तिके नाश होनेके साथ ही कानोंमें भी बहरापन आनें लगता है।

यह तो बताया ही जा चुका है कि शरीरका राजा वीर्य नष्ट होनेसे जब रक्त संचार मन्द हो जाता है तो उसका प्रभाव पाचन एवं निष्कासन क्रियापर भी बुरा पड़ता है जिससे हमारी दशा और भी गिरती जाती है एवं विशेषकर पेटकी गड़बड़ी, मंदाग्नि, रक्ताभाव एवं कब्ज आदि होना स्वाभाविक है। पहिले अध्यायमें एक श्लोकके द्वारा बताया भी जा चुका है कि धातु-क्षयसे मंदाग्नि भी होती है।

रक्त विकारका भी होना स्वाभाविक है फलस्वरूप कुष्ठ भी हो सकता है क्योंकि वीर्यके नष्ट होनेसे शरीरकी ठंडक-क्षमता समाप्त हो जाती है तो रक्तमें अम्लता बढ़ जानेसे गरमी एवं उत्तेजना आकर ऐसा होता है। इसके अतिरिक्त धातुरोग, शिराओंमें कड़ापन आ जाना, दृष्टि-हीनता, पक्षाघात, मृगी, दमा, एवं पागलपन आदि अनेक रोग होते हैं।

हृदय एवं फेफड़ोंको भी पर्याप्त पोषण एवं शुद्ध रक्त न मिलनेके कारण वे कमजोर हो जाते हैं एवं अपने प्रधान आहार ओषजन तथा कैल-शियमसे बंचित रहते हैं अतः कैलसियम एवं फासफोरसके अभावमें हड्डियाँ भी कमजोर हो जाती हैं और अन्तमें छोटे-छोटे रोगोंको कौन कहे मनुष्य क्षय एवं हृदयगति रुक जानेसे मृत्युका भी शिकार हो जाता है।

हृदयकी गति एवं उसके निकटके अवयवोंका रक्त संचार जब मंद पड़ता है तो हाथ पैर सदा ठंडे बने रहते हैं। सिर, गर्दन, कंधा, कुहनी एवं

घुटनोंमें दर्द बना रहता है तथा स्नायुविक शक्तिका ह्रास होनेसे तो मालूम होता है कि स्मरण शक्ति तो सदाके लिए विदा ही हो गई क्योंकि वीर्यका प्रधान स्थान "स्नायु संस्थान" ही तो है।

ब्रह्मचारीकी तंतु मजबूत होती है और उसकी कर्णेन्द्रिय, गोचरेन्द्रिय एवं अन्य कर्म तथा ज्ञानेन्द्रियाँ स्वस्थ होती हैं और शरीरका पूर्ण विकास होता है पर जो ब्रह्मचर्य नष्टकर देता है उसकी स्थिति बिल्कुल भिन्न होती है और उसके तंतु कमजोर, जठराग्नि मंद, अजीर्ण, संधिवात, मूर्छा एवं फेफड़ा आदिके अनेक रोग होते हैं।

उस व्यक्तिमें विचारोंकी स्थिरता एवं गंभीरता न होनेके कारण उसमें प्रेम, धर्म, आत्म विश्वास तथा ईश्वर आस्था नहीं रह जाती। कभी-कभी वे इस प्रकार निणय करते पाये गये हैं और उसकी पुष्टि श्री किशोरलाल भाईने की है "ईर्ष्यासे या प्रेमकी निराशासे कोई पुरुष वेवफा स्त्रीका खून करे, या स्त्री अपने रास्तेका कांटा बननेवाले पतिको खतम कर दे या दोनों साथ-साथ आत्महत्या करें।"

ऐसी अवस्था इसलिए होती है कि बादमें प्रेमके बदले ईर्षा, द्वेष एवं परस्पर अविश्वास होनेके कारण लोग दुश्चरित्र भी हो जाते हैं।

उपरोक्त रोगोंके अलावा स्त्रियोंके गर्भाशय एवं योनि आदिमें जितने भी रोग होते हैं उन सबका प्रधान कारण अति मैथुन ही है। चाहे वह किसी अप्राकृतिक साधन द्वारा अथवा अति पुरुष संगसे किया गया हो जननेंद्रिय संस्थानका मस्तिष्कसे गहरा संबंध होनेके कारण मष्तिष्कपर कुप्रभाव पड़ता है असंख्य जीवों का नाश होता है और इसका पाप स्त्री-पुरुष दोनोंपर पड़ता है अतः युवक-युवतियोंको चाहिये कि इस पापसे बचनेके लिये भी अति, अप्राकृतिक एवं असामयिक मैथुनका परित्याग करें। चरक ने लिखते हैं-

दौर्बल्यं मुख शोषश्च पाढुत्वं सदनं श्रमः।
क्लैव्यं शुक्राविसंगश्च क्षीण शुक्रस्य लक्षणम्॥
शुक्रक्षये मेढ्-वृषण वेदना शक्ति मैथुने।
चिरात् प्रसेकः चाल्प रक्त शुक्रंदर्शनम्॥

शरीरका दुबलापन, मुख सूखना, अंगों में शिथिलता, बिना परिश्रम थकावट, नपुंसकता, मैथुनमें असमर्थता, शुक्रकाअभाव, लिंग तथा अण्डकोष में दर्द, मैथुन करनेपर विलम्बसे अल्प व रक्त मिश्रित वीर्य निकलना आदि लक्षण वीर्यहीन किंवा अल्प वीर्य पुरुषोंमें पाये जाते हैं।

मानसिक फल–सोचने–विचारने एवं कल्पनाकी प्रत्येक क्रियाका संपादन मस्तिष्क द्वारा ही होता है अतः मनकी प्रत्येक क्रियाका प्रभाव मस्तिष्कपर अवश्य ही पड़ता है। मस्तिष्क मनुष्यका जीवन–केन्द्र है और वीर्यका भी अतः हस्तमैथुन अथवा किसी प्रकारके वीर्य नाशकी क्रियाका सीधा प्रभाव मस्तिष्कपर पड़ता है।

प्रायः सुना जाता है कि मैथुनका इतना ह्रासकारी प्रभाव होता है कि उसके बाद ही थकान, आलस एवं बेहोशीतक भी आ जाती है पर इसे भ्रमवश उसी तरह गहरी निद्रा कहते हैं जिस प्रकार अफीमके इन्जेक्शनका, पर दोनोंका बादका फल विनाशक ही होता है।

अस्वाभाविक मैथुनमें स्वाभाविक मैथुनके सिहरन द्वारा पैदा होने वाले क्षणिक आनन्दका भी अभाव रहता है। पति-पत्नी विलासिताकी नहीं वरन् संतानोत्पत्तिकी इच्छासे एक दूसरेसे मिलते हैं तो उनमें निर्भयता प्रेम, आह्लाद, लक्ष्यकी पूर्तिके भाव, आत्माभिमान, आत्म गौरव, आत्म-संतोष एवं नवजीवनके आगमनका भाव जाग्रत होता है कि वह अपने जीवनकी बहुत बड़ी मंजिल एवं उत्तरदायित्व पूरा करने जा रहा है।

आत्म-विकास एवं आत्म विश्वासका सुन्दर भाव अप्राकृतिक मैथुन, हस्त मैथुन, वेश्यागमन, पर स्त्री गमन तथा अपनी ही स्त्रीके साथ अनावश्यक एवं बहुमैथुनमें भी नहीं उठ सकता। बल्कि जहां प्रेमकी उत्कट भावनाका विकास होना चाहिये वहां आत्मग्लानि, थकान, शोक एवं निराशा प्रतीत होती है एवं परस्पर घृणा भी होने लगती है। आत्म-व्यभिचारी प्रेमको ढूंढ़ने एवं प्राप्त करनेको कौन कहे उससे सदा भागता है। जहां शुद्ध प्रेममें आत्म–विकासकी शक्ति छिपी हुई है वहां इसमें गिरावटकी। एक सज्जनके पत्रको यहां उद्धृत कर रहा हूँ, आशा है इससे आपको मदद मिलेगी।

'मेरा एक लड़कीसे बहुत ही गहरा प्रेम हुआ पर जब उस प्रेममें

संभोगका जन्म हुआ तो वह क्रमशः घटता ही गया और जब संभोगकी अति हो गई तो हम दोनों तन–मनसे कमजोर हो गये और परस्पर क्रोध, शंका एवं ईर्षा बढ़ने लगी और यहीं तक नहीं बल्कि भय और अविश्वास इस हद तक बढ़ गया कि दोनोंको एक दूसरेसे सदाके लिये हाथ धोना पड़ा।"

यों तो आप कह सकते हैं कि हस्तमैथुन भी जननेंद्रियकी ही एक क्रिया है फिर भी इसे काम क्रिया नहीं कहा जा सकता। काम शब्दमें दो विभिन्न लिंगोंका-स्त्री पुरुषका होना अनिवार्य है पर इसमें इसका सदा अभाव है। दूसरेके अभावके कारण वभाविक कामनाका विनाश होता है और इस विनाशका ही दूसरा नाम "नपुंसकता" है।

वीर्य क्षयके कारण जीवनकी खिली हुई कलियां मुरझा जाती हैं। बुद्धि कुंठित हो जाती है, मृगी, पागलपन, हिस्टीरिया तथा अनेक मानसिक रोग हो जाते हैं जिससे मनुष्य जीनेसे मरना ही अच्छा समझता है।

इन सबसे बचनेको कौन कहे बल्कि बची खुची चेतना शक्तिको भी भुला देनेके लिए नाच, रंग, बाजे–गाजे, शतरंज, सिनेमा, शराब, गाँजा, भांग एवं अन्य दुर्गुणोंका भी अपनेको शिकार बना लेता है। कहावत है "मरता क्या न करता" वह जीवनसे कितना निराश हो जाता है कि सोचता है कि अब तो मरना ही है तो शेष बची-खुची पूंजीको भी खर्च करते चलो ताकि वह जल्दी मौतका आलिंगन कर सके।

प्रायः देखा जाता है कि युवक–युवतियां उन्नतिशील एवं विकासकारी चित्र देखनेके बदले अपने सामने सदा वह तस्वीर देखती रहती हैं कि जो उनके गिरावटका कारण रहा है और है।

लघु मस्तिष्कही कामुकता तथा शारीरिक गतिका केंद्र कहा जाता है। जब कभी व्यक्ति अपनेको विषय वासनाके अंदर लिप्त कर देता है तो उसका लघु मस्तिष्क शीघ्र ही थक जाता है एवं मस्तिष्कमें सूनापनका अनुभव होता है एवं जोड़ोंमें दर्द, चलनेमें लड़खड़ाहट एवं साथही सभी ज्ञानेंद्रियों की शक्ति क्षीण हो जाती है।

ब्रह्मचर्य भंगसे साहस, पराक्रम, वीरत्व, धैर्य, शांति, कीर्ति, आनंद, ज्ञान एवं सद्विचार आदिका लोप हो जाता है एवं अंतःकरण अपवित्र,

दुर्बल, मन मलीन एवं आत्मा गिरी हुई निरुत्साहित हो जाती है। उसके जीवनमें किसी प्रकारका आकर्षण नहीं रह जाता।

आत्मापर पड़नेवाला प्रभाव–तन, मन एवं आत्माका परस्पर संबंध है। एक की क्रियाकी प्रतिक्रिया दूसरेपर हुये बिना नहीं रह सकती। जब इन दुष्कर्मों द्वारा हमारे तन-मनकी गिरावट होती है तो हमारी आत्मामें भी उसी प्रकारका रोग शुरू हो जाता है। जिस स्वस्थ आत्माका कार्य भटके हुयेको रास्ता बताना है उसकी ध्वनिमें उस शक्तिका सदा अभाव रहता है।

मनुष्य जब किसी अनुचित पथपर पग रखता है तो आत्मा उसे रोकती है पर जब दानवी शक्ति हमपर विजय प्राप्त कर लेती है तो आत्मिक शक्ति क्षीण होकर दब जाती है और अंतमें हमारी वही दशा हो जाती है कि हम कुविचार एवं कुचेष्टाओंके दास बनकर शर्म–हयाको पीकर उस क्षणकी प्रतीक्षा करते हैं कि किस दिन वह महाप्रभु अपने लोकमें बुलाये क्योंकि इस लतमें फंसे व्यक्तिमें इन्द्रिय–निग्रह आत्म–विश्वासका नाम तक शेष नहीं रहता।

आत्मशक्ति इतनी कमजोर हो जाती है कि वह प्रण करता है "बस एक बार और" किंतु यह एक बार जीवन भर उसका साथ नहीं छोड़ता और वह बार-बार फिर उसी गलतीकी पुनरावृत्ति करता है। जिस प्रकार हिंसा, हिंसासे नहीं प्रेमसे जीती जा सकती है उसी प्रकार काम, कामसे नहीं बल्कि त्याग, एवं संयमसे। कामाग्नि तो सदा कामसे ही प्रज्वलित होती है जैसा कि मनुस्मृतिमें लिखा है:–

न जातु कामःकामनामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ २/९४ ॥

जैसे आगमें घी डालनेसे आग बढ़ती है, बुझती नहीं, इसी प्रकार इच्छाओंकी जितनी ही पूर्ति होगी उतनी ही बढ़ेंगी कम नहीं होंगी।

इसी प्रकार एक विद्वानने कहा है "ख्वाहिश कभी बुझती नही, जो बुझाता है वह खुद ही जलता है।"

मिश्रित फल–पिछले अध्यायोंमें हस्तमैथुन तथा अन्य प्रकारके संभोग से होनेवाले शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक हानियोंको बतानेका प्रयत्न

किया गया है पर यहां सबका होनेवाला मिश्रित प्रभाव बतानेका प्रयत्न किया जायेगा।

यों तो अप्राकृतिक मैथुन, बहु मैथुन पर स्त्री गमन एवं वेश्या गमन आदि दुर्गुण ऐसे हैं कि जिनसे छुटकारा पाना कठिन है पर असम्भव नहीं, यदि हमारे अंदर दृढ़ निश्चय शेष है तो हम निश्चय ही इसपर विजय प्राप्त कर सकते हैं जैसाकि नीचेके कुछ पत्रोंके उद्धरणसे मालूम होगा।

"मैं १४ वर्षकी आयुमें इस घातक हस्तमैथुनका शिकार हुआ। पहिले तो कभी-कभी कर लेता था पर १८ वर्षकी उम्रतक पहुँचते-पहुँचते दिनमें दो बार करने लगा। मुझे नींद नहीं आती, पढ़ने वैठता तो दो ही चार पन्नेमें थक जाता। अंतमें मैंने दृढ़ संकल्प किया और इससे मोर्चा लेना शुरू किया। पहिले ही प्रयासमें जहाँ दिन में दो बार करता था सप्ताहमें एक बार करने लगा और अंतमें ६ मासके निरन्तर संघर्ष एवं प्रयत्नके बाद इसपर पूर्ण रूपसे विजय पाया।"

"मुझे आप बेवकूफ एवं बेशर्म कह सकते हैं और वास्तवमें हूँ भी कि सिवाय मूर्खके कौन अपना वीर्य रत्न गवांता। मैं तो समझता था कि मैं ही इस (हस्त मैथुन) का शिकार हूँ पर और मित्रोंके संपर्कमें ज्यों–ज्यों आने लगा तो पता चला कि मैं ही नहीं अनेक इस शैतानके चंगुलमें फंसे हैं। कृपया आप इससे छुटकारा पानेका उपाय बतानेका कष्ट करें।"

अनेक तो अनभिज्ञता वश इसके शिकार होते हैं पर कुछ लोग तो कौतूहल वश जान बूझकर जब इस लतमें फंस जाते हैं तो इसके फलस्वरूप होनेवाले रोगोंसे आजिज आकर उस क्षणिक आनन्दको भूलकर "ईश्वर बचाओ, ईश्वर बचाओ" का नारा बुलंद करते हैं।

'जब पहिले पहिल मेरी स्त्री मेरे घर आई तो एक रातमें मैंने एक बार उससे संभोग किया फिर तो मुझे उसमें एक प्रकारका आनन्द आने लगा और मैं नित्य रात-दिन मिलाकर ५-६ बार करने लगा। न मैं शर्म देखता और न हया, न तो मां बापका भय और न समाजका ही डर लगता। फिर १५ दिनमें ही मेरी वह दशा हो गई कि जो वर्षोंसे बीमार रोगीकी नहीं होती है फिर तो मैं लोगोंसे बात करते झेंपता, आंखसे आंख मिलानेकी हिम्मत

ही नहीं होती और शर्मके मारे दिन भर घरमें पड़ा रहता।"

"सौभाग्यसे ब्रह्मचर्यपर मेरे हाथ एक पुस्तक पड़ी और मैं उसके "ब्रह्मचर्यकी महिमा" अध्यायको ध्यान पूर्वक पढ़ा फिर उसी समयसे मैंने दो साल तक संभोग न करनेका निश्चय किया फिर क्या कहना था मेरा स्वास्थ्य सुधरने लगा और आज तो मैं काफी स्वस्थ हूँ।"

बापू भी पहिले बहुत विषयी थे और उनका भी स्वास्थ्य दिनों-दिन गिरता जा रहा था पर जब उन्होंने ब्रह्मचर्यके महत्वको अच्छी तरह समझकर उसपर चलना शुरू किया तो उनका चतुर्मुखी विकास हुआ, जैसा कि उन्होंने अपनी आत्म कथामें लिखा है :—

"ब्रह्मचर्यका सोलह आने पालनका अर्थ है ब्रह्म-दर्शन। यह ज्ञान मुझे शास्त्रों द्वारा न हुआ था। यह तो मेरे सामने धीरे-धीरे अनुभवमे सिद्ध होता गया। उससे सम्बन्ध रखनेवाले शास्त्र वचन मैंने बादको पढ़े। ब्रह्मचर्यमें शरीर रक्षण, बुद्धि रक्षण, और आत्माका रक्षण, सब कुछ है—यह बात मैं व्रतके बाद दिनों दिन अधिकाधिक अनुभव करने लगा, क्योंकि अब ब्रह्मचर्य को एक घोर तपश्चर्या रहने देनेके बदले रसमय बनाना था, उसीके बलपर काम चलाना था। इसलिये अब उसकी खूबियोंके नित नये दर्शन मुझे होने लगे।"

"बचपनसे ही मेरे माँ-बाप उत्तेजक खाद्य सेवन करनेका मुझे आदी बना दिये थे। यों तो धीरे-धीरे पर १८-१९ वर्षकी आयुमें मेरे अंदर जोरों की उत्तेजना शुरू हुई। फिर तो मैं गांवके एक वेश्याके यहाँ आने-जाने लगा फलस्वरूप मुझे बदलेमें गर्मी, सूजाक मिला, जिसके लिये आजतक भुगत रहा हूँ। कृपया इसकी कोई चिकित्सा बतायें वरना समाजवाले मुझसे घृणा तो करते ही हैं पर यह रोग फूट निकलनेपर मेरी शक्ल एवं परछाहींसे भी नफरत करेंगे।"

इनसे होनेवाली बुराइयाँ– यों तो हस्तमैथुन एवं अन्य वीर्य नाश करनेवाले साधनोंसे होनेवाली हानियोंकी सूची बनाई जाय तो शायद इतनी बड़ी हो जाय कि मनुष्य बनाते-बनाते आजिज आ जाय पर यहां तो मैं कुछ अनुभवी विशेषज्ञों, चिकित्सकों एवं विद्वानोंकी राय तथा अपने पास रोगियोंके

आये हुये पत्रोंका केवल सार ही देना चाहता हूँ।

अमेरिकाके प्रसिद्ध चिकित्सक डा० जे० एच० केलाग एम० डी०ने लिखा है "हस्तमैथुनसे रीढ़की दुर्बलता, पेशियोंकी दुर्बलता, भूखका अभाव, पाचन क्रियामें मंदता, मंदाग्नि, स्नायुदौर्बल्य, दृष्टिका कम होना यह तो साधारण फल है पर अधिक दिन तक इस लतका शिकार होनेपर रोगी दुर्बल, कांतिहीन, मांस पेशियोंमें झुर्री, पीलापन, एवं कमजोरी बढ़ते-बढ़ते एक दिन वह यक्ष्मा का शिकार हो जाता है।"

डा० अदम क्लार्कका कहना है "अपने आप वीर्य स्खलनका जो पाप है वह इस विनाशक लतके कारण हीं होता है। बहुत मानोंमें यह वेश्या-गमनसे भी भयानक फल देनेवाला है। यह स्वभाविक आदतको गलत काम करनेके लिये तेजीसे उत्तेजित करता है।"

डा० क्राफ्ट एविंगने लिखा है "यह कलीकी सुन्दरता एवं महक नष्ट कर देती है। जिसे पूर्ण फूल एवं पत्ती होनेपर ही खिलना चाहिये पर यह कुंठित बुद्धिवाले इंद्रिय तृप्तिके लिये महान भूल करते हैं। ऐसे लोग जब बच्चा पैदा करनेकी आयुको पहुँचते हैं तो उनके पास नतिक विचार एवं आकर्षणका अभाव होता है जो कि दूसरे लिंग (Sex) को अपनी ओर आकर्षित कर सकें। इससे नैतिकता, स्वस्थ चिंतन शक्ति, चरित्र एवं कल्पना शक्ति तथा जवानीकी अनुभूति नष्ट हो जाती है और कुछमें तो दूसरी लिंगकी इच्छांका तो लोप ही हो जाता है और किसी प्रकारके स्वाभाविक संयोगकी अपेक्षा उन्हें हस्तमैथुन ही पसंद आता है।"

कामशास्त्रके विशेषज्ञ डा० राबिसनने हस्तमैथुनसे होने वाली हानियों की चर्चा करते हुये लिखा है :-

"रक्ताभाव, हृदय-दौर्बल्य एवं मंदता, अध्ययन अथवा किसी काम पर अपनेको एकाग्र करनेमें असमर्थता, स्मरण शक्तिकी दुर्बलता, स्वयं विश्वासका अभाव, दूसरोंसे आंखमें आंख मिलाकर न देखना, पीलापन, चेहरा खराब हो जाना, मुखपर झुर्रियां एवं काले दाग पड़ना, आंखोंके नीचे काली लकीर, पेशाब गंदला आना एवं स्वप्नदोष आदि होता है।" और इसीके आधार पर यह नतीजा निकल सकता है कि "प्रमेह" शुक्र कीटाणुका

अभाव, नपुंसकता, जननेन्द्रिय सस्थानकी स्नायुविक दुर्बलता, संवेदन शीलता का लोप, दूसरी लिंगकी ओरसे पूर्ण उदासीन अतः ऐमे लोग या तो जीवन भर अकेले रहते हैं और वे यदि शादी कर भी लिये तो उनकी स्त्री जीवन भर दुखी रहती हैं और इसी प्रकार जो स्त्रियां इस लतकी शिकार होती हैं उनकी भी यही दशा होती है। एक अनुभवी वैद्यने कहा है :–

"यों तो इससे अनेक रोग होते हैं पर मुख्यत: पेटमें चोकना, दांत सड़ना, बाल सफेद होना, उदासीनता, कमरमें दर्द, स्वप्नदोष, प्रमेह, शूल, मंदाग्नि, कब्ज, अकाल मृत्यु एवं उपदंश आदि होता है।"

रोग और उनकी चिकित्सा

प्राकृतिक चिकित्सामें प्राय: सभी रोगोंका कारण एक ही होता है और उसकी चिकित्सा भी एक ही है। हां, रोग एवं रोगीकी अवस्था देखकर कुछ अवश्य घटा-बढ़ा दिया जाता है अतः इसी मूलभूत सिद्धांतके अनुसार जननेन्द्रिय संस्थानके प्राय: सभी रोगोंमें निम्नांकित नियमोंका तो अवश्य ही पालन करना चाहिये।

१–जब तक रोग चला न जाय स्त्री-पुरुष दोनोंको ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करना चाहिये एवं रोग चले जाने पर भी संयमित जीवन बिताना चाहिये।

२–शक्ति के अनुसार १०-३० मिनट तकका सुबह-शाम कटि नहान और एक सप्ताह बाद सुबह मेहन एवं शामको कटि नहान लेना चाहिये।

३–प्रात:काल शक्तिके अनुसार १५ मिनटसे शुरू करके जाड़ेमें १ घंटेतक एवं गर्मियोंमें ३० मिनट तककी धूप लेनी चाहिये।

४–ब्रह्मचर्य रक्षामें बताये सभी नियमोंका, पालन करना चाहिये।

५–सभीको सर्वांगासन, हलासन, मत्यासन, सर्पासन, शलभासन, पश्चिमोत्तानासन एवं शवासन करना चाहिये।

६–शक्तिके अनुसार सुबह–शाम गहरी सांस लेते हुये टहलना चाहिये।

उपरोक्त नियमोंमें से जब तक चिकित्सक किसीका निषेध न करे, पालन करना चाहिये और रोगके साथ जिस चिकित्साका वर्णन किया जाय उसे

इसके साथ शामिल कर लेना चाहिये।

चिकित्साके साधन

मिट्टीकी पट्टी–दो तीन घंटे पहिले साफ मिट्टीको किसी मिट्टीके अथवा अन्य बर्तनमें भिगो दें फिर लकड़ीके करछुले या करनीसे चलाकर हलुवेकी तरह बनालें ताकि मिट्टीके प्रत्येक कण टूट जायँ फिर किसी कपड़ेपर आधसे एकइन्च मोटी, ५-६ इन्च चौड़ी और ८-९ इन्च लम्वी पट्टी बनाकर नाभिके नीचे रखकर ऊपरसे कोई ऊनी कपड़ा रख दे और आध घंटेके बाद पट्टी हटा देनी चाहिये।

कटि नहान–के टबमें नाभि तक पानी भर एवं पैर वाहर करके नंगे वैठ जायं फिर मुलायम तौलियेसे पेड़ूके इस छोरसे उस छोर तक और कभी-कभी नीचेसे ऊपर भी तेजीसे रगड़ें। अन्तमें टबसे वाहर आकर बदनको सुखा लेना चाहिये और फिर तेजीसे टहलने निकल जांय।

मेहन नहान–कटि नहानकी सारी क्रिया केवल पानीमें एक ओर चन्द्राकार चौकी होगी। पानी चौकीसे स्पर्श करता हुआ अथवा एक इन्च ऊपर होगा। मूत्रेंद्रियका घूंघट आगे खींचकर तर्जनी और मध्यमा अंगुलीके वीच हलका पकड़ें, दाहिने हाथसे मुलायम कपड़ेसे पानी उठा-उठाकर चमड़ी का अग्रभाग तेजीसे रगड़ना चाहिये किन्तु छिलने न पाये। पानी जितना ही ठंडा हो उतना ही उत्तम फल देगा।

जिनके जननेंद्रियका घूंघट कटा हो उन्हें गुदासे फोते तककी रेखाको रगड़ना चाहिये। स्त्रियोंको भगका ऊपरी भाग चारों ओरसे रगड़ना चाहिये पर पानी अंदर प्रवेश न करे।

गरम-ठंडा बैठक नहान–दो टब, एकमें गरम और एकमें ठंडा पानी भर दें कि जिसमें नितंब प्रदेश एवं उदर आदि डूव जाय। पानीमें सामान्यतः गरम में ४ मिनट, ठंडा में १ मिनट बैठें।

इस क्रियाको चार वार दुहरायें। गरम पानीका ताप शरीर तापसे और ठंडा पानी ताजे जलसे शुरू करें पर जब-जब गरम ठंडे पानीमें बैठें तो क्रमशः २–३ लीटर गरम-ठंडा पानी टबमें से निकालकर उसमें अपेक्षाकृत अधिक गरम और अधिक ठंडा पानी मिलाते जायं। गरम पानीका ताप १०८

फा०हा० और ठंडे पानीका ६०-६५ फा०हा० तक होना चाहिये। यदि सिरपर गर्मी मालूम हो तो ठंडी भीगी तौलिया रख लें।

गरम-ठंडा सेंक—गरम-ठंडा नहानकी ही तरह सारी प्रक्रिया है, फर्क इतना ही है कि पानी टबमें न रखकर अंगीठी पर किसी बर्तनमें रखना पड़ता है और पानीमें तौलिया डुबो और फिर उसे निचोड़ कर सेंक दिया जाता है।

योनिका एनीमा—साधारण अथवा योनि एनीमा द्वारा योनिको पहिले गुनगुने पानीसे धोयें और अंतमें १/४ ली० ठंडे पानीसे। नीमकी पत्तीको पानीमें उबालकर और उसे गुनगुना करके डूस देना अधिक उपयोगी है।

स्थानीय गीली पट्टी—जिस स्थानकी पट्टी देनी हो उसीके अनुसार लंबा-चौड़ा महीन कपड़ा क्रमशः भिगो एवं निचोड़कर उस स्थानपर दो-तीन पर्त लपेटकर ऊपरसे ऊनी अथवा फलालैनका कपड़ा लपेट दें। पट्टी खोल-कर ठंडे पानीको हथेलीमें लगाकर उस स्थानको १–२ मिनट रगड़कर सुखा देना चाहिये। पट्टी १-२ घंटे तक रहे। नींद आ जानेपर अधिक देरतक भी रहनेपर कोई हानि नहीं।

छोटा उपवास—२-३ दिनका होता है। इसमें किसी विशेषज्ञकी आव-श्यकता नहीं। अपने आप किया जा सकता है।

विधि—किसी प्रकारका आहार न लेकर केवल २–२॥ लीटर पानी अथवा उसमें दो-तीन नींबू डालकर पीयें। यदि इससे काम न चले तो २५० मिली० पानीमें एक संतरा या एक मीठा नींबू या एक मुसम्मी अथवा १० ग्राम शहद मिलाकर पीयें।

ठंडे जलसे रगड़-रगड़कर नित्य नहाना चाहिए एवं शीतल एनीमा लेकर आंतोंको साफ करना चाहिये।

इस दौरान किसी प्रकारका उपद्रव—सिर दर्द, चक्कर, मिचली आदि—हो तो घबड़ायें नहीं। पर्याप्त पानी पीते रहें, सभी लक्षण अपने आप शांत हो जायेंगे। उपवास सदा किसी रसदार फल या हरी सब्जीके रससे अथवा यदि दूध कल्प बताया जाय तो दूधसे तोड़ना चाहिये।

फलाहार—बड़े उपवासमें तो कमजोरीका भय रहता है पर इसे तो

महीनों नित्य कर्म करते हुए चलाया जा सकता है।

विधि–दिनमें ४ वार और एक वारमें २००–३०० ग्राम तक ताजे रसदार फल—सेव, नाशपाती, संतरा, मुसम्मी, अनन्नास, नाख या १२५ से २०० ग्राम तक अंगूर लिया जा सकता है।

फल-दूध–फलाहारके साथ प्रत्येक वार १०० मिली०से शुरू करके क्रमशः वढ़ाते हुये ५०० मिली० तक धारोष्ण अथवा कच्चा दूध लेना चाहिये।

दूध-कल्प–जब आप पूर्ण दुग्धाहारपर रहें तो प्रथम दिन ८ बजे सुबह से लेकर ८ वजे रात तक प्रत्येक दो-दो घंटेपर २५० मिली० दूध पीयें दूसरे दिन प्रति डेढ़ घंटेपर २५० मिली०, तीसरे दिन प्रत्येक घंटेपर २५० मिली०। इस प्रकार धीरे-धीरे दूधकी मात्रा उस समयतक वढ़ाते जाइये जवतक प्रति आधा घंटापर २५० मिली. न हो जाय। दूध धारोष्ण एवं अपक्व होना चाहिये पर यदि आवश्यक हो तो हल्का गरम भी किया जा सकता है। यह वहुत धीरे-धीरे पीना चाहिये। दूधके ऊपरकी मलाई हटा देनी चाहिये। वीचमें एक खूराकमें १/४ ली० संतरेका रस लें और यों तो नित्य दो नींबू चूसे ही।

जव कब्ज हो तो एनीमा लेना चाहिये एवं दूध-कल्प समाप्त करनेपर भोजन इस प्रकार रखें। ३ बजेतक दूध लें फिर ७ वजेतक कुछ नहीं और उस समय एक प्लेट सलाद लें। यही दूसरे दिन भी फिर उसके साथ अंकुरित गेहूँके ५० ग्राम चोकर समेत आटे की रोटी, उवली हुई सब्जी और फिर क्रमशः सामान्य भोजनपर आ जायं।

पूर्ण वाष्प स्नान–अनेक प्रकारसे लिया जाता है पर सबसे सरल विधि यह है कि दो अंगीठी अथवा वोरसीपर ढक्कनदार वर्तनमें पानी गरमावें और जव खौलने लगे तो निखरहरी चारपाईके नीचे उन्हें रख दें और रोगी उसपर नंगे वदन लेटकर ऊपरसे जमीनसे छूता हुआ कंवल अथवा कोई गरम गफ़ कपड़ा ओढ़ लें फिर पानीके ढक्कनको धीरे-धीरे अधिक तेजीके लिए अधिक और कमके लिये कम हटाये। सिरपर ठंडे पानीमें भीगी एवं निचोड़ी तौलिया रखना चाहिए। खूब पसीना हो जानेपर निकलकर ताजे पानीसे नहा लें और सुविधा हो तो १० मिनटका पेड़ू (कटि) नहान वरना आध घंटे तक पेड़ूपर मिट्टीकी पट्टी लें।

गीली चादरकी पट्टी—क्रमशः मोटी गफ़ चादर, १ या २ कंबल, महीन चादर और धड़के नीचे महीन कपड़ेका टुकड़ा ठंडे पानीमें भिगो एवं निचोड़कर फैला दें और उसपर रोगीको नंगे बदन लेटाकर क्रमशः महीन टुकड़ा, महीन टुकड़ासे लपेटते समय हाथ बाहर पर चादर लपेटते समय अंदर होगा, महीन चादर, कंबल और चादर लपेटकर ऊपरसे कंबल या रजाई डाल दें। यह पट्टी ऋतुके अनुसार आधेसे १ घंटे तक रहनेके बाद खोलकर ठंडे पानीसे नहा लें। धूपमें पट्टी दें तो सिरपर भीगी तौलिया रखना चाहिये।

हरी पत्तीका स्नान—१ गिलास गरम पानी पीकर धूपमें हरी पत्ती केला, नीम, पीपल, कमल, पलास एवं कुमुदिनी आदि पर लेटकर ऊपरसे भी उसीसे ढ़क लें और सिरपर गीली तौलिया रख लें। शक्ति के अनुसार २५-३० मिनटतक रहें और निकलकर ठंडे पानीसे रगड़-रगड़कर नहा लें। सम्भव हो तो १० मिनटका कटि नहान भी लिया जा सकता है।

एनीमा—पीठके बल लेटकर ३-४ फीटकी ऊँचाईपर एनीमाके बर्तनको टांग देना चाहिये। फिर नोजुल खोलकर हवा बाहर निकालकर नोजुलपर तेल, घी, या वायस्लीन लगाकर गुदाके अन्दर लगा ले। जब बर्तनमें ६०-१०० मिली० पानी रह जाय तो नट बन्द करके नोजुल गुदाके बाहर कर दें और १०-१५ मिनटतक पानी रोकनेके बाद शौच जायें। पानी शरीर तापका आधा से एक लीटर होना चाहिये। नोजुलके आगे १० नं०का रबर कैथीटर लगाना

आसन—यों तो अनेक आसन हैं पर साधारणतः जननेंद्रिय संबंधी रोगों के लिये निम्नांकित आसन पर्याप्त हैं:—

भुजंगासन—पैरसे नाभितक जमीनमें चिपकाकर हाथको छातीके बगलमें रख दोनों पंजोंके बल सिरको सांपकी तरह ऊपर उठायें और रीढ़को पीछेकी ओर झुकायें।

शलभासन—सीनेके बल लेटकर दोनों हाथोंकी मुठ्ठियां बांधकर नीचे रखें और सांस रोककर दोनों पैरोंको सीधा करके धीरे-धीरे ऊपर ले जाकर रोका जाय और फिर धीरे-धीरे सांस निकालते हुये नीचे लाया जाय।

धनुरासन—पेटके बल लेटकर दोनों पैरोंको सीधे लकड़ीकी तरह

फैलायें और दोनों हाथ पीठकी ओरसे लाकर दोनों पैरोंको पकड़कर एक ओर सिर, कंधा, छाती और दूसरी ओर जंघाको ऊपरकी ओर उठाकर शरीरको धनुषकी तरह बनाकर-घुटने यदि मिले रहें तो उत्तम है–रोकें और फिर धीरे–धीरे पूर्वावस्थामें आ जायं।

हलासन–चित्त लेटकर दोनों हाथ जंघेके दोनों ओर रखकर दोनों पांवोंको सीधा रखें, हाथको उसी तरह रहने दें और पैरको धीरे–धीरे ऊपर उठायें और क्रमशः ३०, ६० एवं ९० अंशके कोण बनने पर थोड़ा विश्राम कर अंतमें दोनों पैर पीछे जमीनपर ले जायें। दोनों पंजे और दोनों जंघे परस्पर मिले होंगे और पैर सीधा रहेगा। इसके बाद फिर क्रमशः पूर्वावस्था में आ जायं।

पश्चिमोत्तान–दोनों पैर जमीनपर सीधा फैलाकर दोनों हाथोंसे पैरके अंगूठे पकड़े और सांस बाहर निकालकर जांघोंके बीच अपने सिरको रखकर घुटनोंको छूवें।

अर्ध मत्स्येंद्र–बायें पांवकी एड़ी गुदा द्वारपर रखकर फिर दाहिना पांव घुटनेके नजदीक मोड़कर बायें पैरको बाहर रखें। इसके बाद बायें हाथ को दाहिने जांघके ऊपर देकर बायें हाथसे बायें घुटनेको पकड़ें, इस समय दायां घुटना बायें बगल द्वारा दबाकर पकड़ना चाहिये फिर दाहिना हाथ पीछे ले जाकर पांवकी एड़ी पकड़कर पीठ, माथा एवं कंधा दाहिनी ओर घुमाना पड़ता है। इसे करनेके बाद फिर दाहिनी पैरकी एंड़ी पर बैठकर बताये अनुसार करें।

सर्वांगासन–हलासनकी तरह सारी क्रिया, इसमें पैर पीछे न जाकर सिरके ऊपर आसमानकी ओर सीधा रहेगा और दोनों हाथ पीठपर और ठुड्डी से गला (चुल्लिका ग्रंथि) दबाना चाहिये। कुछ देर रुकनेके बाद फिर धीरे–धीरे पूर्वावस्थामें आये।

शवासन–पीठके बल सीधा लेटकर सारे शरीरको ढीला कर मस्तिष्क को शून्य बना लेना चाहिये।

गुप्त रोग

किसी दूसरे व्यक्तिके संसर्ग अथवा सहवाससे होनेवाले रोगको सांसर्गिक रोग कहते हैं। इसका मूल कारण तो अनैतिक अपराध अथवा व्यभिचार ही है। इसका परिणाम केवल उस व्यक्तिको ही नहीं, बल्कि उसकी स्त्री और यदि रोगी स्त्री है तो उसके पति एवं संतानको भी भोगना पड़ता है। यदि पतिको यह रोग है तो स्त्रीके सती साध्वी रहनेपर भी उसे लग जानेकी संभावना रहती है। मनुष्य इस रोगको छिपानेका भरसक प्रयत्न करता है, इसीलिये इसे गुप्त रोग एवं समाजका कलंक कहा जाता है। यों तो इसके अनेक रूप एवं प्रकार हैं पर मुख्यतः—

१–गरमी २–सूजाक और ३–उपदंश जन्य क्षत। उपदंश जन्य क्षतका संक्रमण व्यापक न होकर स्थानिक होता है। सूजाक एवं गरमीकी अपेक्षा कम गंभीर एवं व्यापकता भी कम होती है पर गरमी–सूजाक महान् घातक होता है। एक समय था जबकि सूजाकको भी सर्दी जुकामका सा रोग माना जाता था पर आजका वैज्ञानिक युग इसे वड़ा ही भयंकर मान रहा है फिर भी प्रो० एरनाल्ड एहरेटने अपनी पुस्तक "म्युकस लेस हीलिंग सिस्टम" में इसे श्लेष्मा जन्य रोग ही माना है।

यह दोनों ही कीटाणु विशेषसे उत्पन्न होनेवाले रोग हैं। एक बार प्रवेशकर जानेपर फिर इससे मुक्ति मिलना असंभव तो नहीं पर कठिन तो अवश्य हो जाता है क्योंकि इनका प्रभाव शरीरके प्रत्येक अवयव एवं तंतुपर पड़ता है।

यह तो पहिले ही वताया जा चुका है कि इसका कुपरिणाम उसकी स्त्री एवं संतानको भोगना पड़ता है अतः यह आवश्यक है कि जबतक इस रोगसे छुटकारा न मिल जाय स्त्री संसर्ग अथवा संतानोत्पत्ति करनेका साहस नहीं करना चाहिये। इसकी पूर्ण चिकित्सामें अवस्थाके अनुसार ४-६ मास तक भी लग सकता है। उपदंशीकी संतान या तो गर्भमें ही मर जाती है अथवा पैदा होनेके चंद घंटे बाद। यदि जीवित रही तो स्वास्थ्य खराब होना निश्चित ही है।

सूजाकमें सीधा प्रभाव उत्पादक अंगोंपर पड़ता है, जो बढ़कर नारी के **फेलोपियन** नलिकाओंतक पहुँच जाता है एवं जब यह स्थानीय रूप धारण कर लेता है तो उस स्त्रीको वंध्यापनतक हो जाती है पर यदि उचित रीति से प्राकृतिक-चिकित्साकी जाय तो वह रोग मुक्त हो सकता है।

सूजाकमें प्रथम लक्षण उत्पादक अंगमें किसी अन्य तीव्र संक्रमणकी ही भांति होते हैं, इसके बाद शीघ्र ही कुछ पीलापन लिये हुये गाढ़ी पीवका स्राव होने लगता है और यदि यह पीव दूसरेको किसी प्रकार लग जाय तो उसे भी हो सकता है। इस रोगीकी अधिकांश संतान प्राय: अंधी हो जाती है। इसके उपचारमें प्रायः ३–४ मास लग सकता है । इन तीनों प्रकारके रोगोंके अलग-अलग वर्णन एवं उपचार बतानेका प्रयत्न किया जायेगा।

उपदंशजन्य क्षत—यह एक प्रकारका जहरीला घाव है। यह घाव आकृतिमें गोल, अंडाकार अथवा अनियमित रूपसे योनि-मुखपर होता है। जब इसकी पीव दूसरी जगह लग जाती है तो वहां भी ऐसा ही घाव हो सकता है एवं इस घावमें बहुत दुर्गन्धयुक्त स्राव होता है। यह रोग शरीरके किसी भी भागमें हो सकता है। स्त्रीको यह प्राय: पुरुषसे ही प्राप्त होता है।

लक्षण–इस क्षतको बहुधा लोग कोमल व्रण कहते हैं। इसे उपदंश, जिसे 'सख्त व्रण" कहते हैं, का प्रस्तावना या पूर्व रूप ही समझना चाहिये। इन दोनोंमें केवल इतना ही अंतर है कि उपदंशके कारण जो घाव होता है वह सख्त अथवा कड़ा एवं प्रायः चिकना और सूखा होता है। इसमें से पीव बहुत कम अथवा बिल्कुल ही नहीं निकलता किन्तु इसके विपरीत उपदंश जन्य क्षत कोमल होता है, पीव जल्द पड़ जाती है एवं कुछ भूरापन लिये हुये होता है। इसकी सतह बेडौल और किनारे खुरदरे होते हैं, इसके चारों ओर प्रदाह होता है एवं साथ ही बहुत दुखता भी है। यह बहुत तेजीसे बढ़ता एवं गहरा होता है और कभी-कभी तो इसके आस-पास दूसरे क्षत भी हो जाते हैं।

चिकित्सा– छोटा उपवास, दो सप्ताह फलाहार, ३ सप्ताह फल दूध फिर छोटा उपवाससे प्रारम्भकर जबतक रोग चला न जाय इस क्रमको दुहराते रहना चाहिये।

घावोंपर साफ सुथरी मिट्टी भिगोकर लगानी चाहिये।

धूपमें रखे हुये पानीसे स्नान करना चाहिये।

पूरे शरीरका सुविधानुसार साप्ताहिक वाष्प स्नान या गीली चादर की पट्टी या पत्ती नहान।

सूजाक–"गोनोकोकस" नामक कीटाणु एवं पीवके संक्रमणसे योनि नली अथवा योनिमें अशुद्ध रक्तवाली स्त्रियों एवं पुरुषोंमें यह अधिक होता है। इससे बचनेके लिये शुद्ध रक्त एवं जीवनी शक्तिका ठीक होना आवश्यक है।

लक्षण– जननेंद्रियसे दुर्गन्धयुक्त स्राव होना शुरू होता है एवं इसके पीवकी कृमियोंमें संक्रमण शक्ति बहुत प्रबल होती है। इस रोगकी छूत लगने, कृमियोंके परिपक्व होने एवं पनपनेमें तीनसे १० दिनका समय लगता है।

स्राव शुरू होनेके १-२ दिन पहिले जननेंद्रियमें कुछ चुनचुनाहट, खुजली या जलन सी मालूम होती है। प्रारम्भमें तो स्राव सफेद रंगका और बादमें वह गाढ़ा पीलापन लिये हुये होता है पर किसीमें बहुत अधिक और किसीमें बहुत कम। प्रारंभिक अवस्थामें पेशाब करते समय बहुत कष्ट होता है पर रोग बढ़नेके साथ ही कष्ट घटने लगता है। कभी-कभी तो पीवके साथ रक्त भी आ जाता है, दर्द प्रायः पीठ एवं कमरके पुट्ठोंमें प्रतीत होता है। स्त्रियोंमें योनि नलीसे बढ़कर रोग आगे न बढ़नेपर चिकित्सा आसान है पर आगे इसका प्रभाव गुर्दोंपर भी पड़ सकता है।

यों तो इस रोगका कारण एवं प्रभाव क्षेत्र स्थानीय होता है पर इसका आक्रमण अन्य अंगोंपर भी हो सकता है, जैसे गठिया एवं रक्त विकार के द्वारा होनेवाला अन्य रोग। आँखोंकी श्लेष्मिक झिल्लीपर इसका प्रभाव होता है। आंखोंपर इसका पीव लग जानेपर भयंकर नेत्र रोग हो सकता है। यहां तक कि संतानमें अंधापन पाया जाय तो उसका प्रधान कारण माँ–बापका सूजाक रोग है। नारीके जननेंद्रिय संस्थानपर भी वही सब लक्षण प्रकट होते हैं।

चिकित्सा– १५ दिन फलाहार, छोटा उपवास, २ सप्ताह चरनेवाली बकरीका धारोषण दूध। इसी क्रम को उस समयतक दुहराते रहें जब

तक रोग चला न जाय।

जल चिकित्सा–साप्ताहिक पूरे शरीरकी गीली चादरकी लपेट।

साप्ताहिक वाष्प नहान या पत्ती नहान।

नारी जननेंद्रियका रोजाना नीमके पत्तीके पानीका डूस लेना चाहिये।

उपदंश–यह ऐसा प्रसिद्ध रोग है कि शायद ही संसारका कोई भाग इससे अछूता हो और साथ ही बहुत प्राचीन भी। चीन, मेक्सिकों, अरब, ग्रीस एवं रोम आदि देशोंके प्राचीन साहित्यमें इसकी चर्चा है। प्रारम्भमें क्रिष्टोफर कोलंबसके जहाजी यात्रियोंको यह रोग पश्चिमी संसारके आदिवासियोंके संसर्गसे हुआ। उनके द्वारा यूरोपमें इसका आगमन होकर प्रसार हुआ। किन्तु प्रकट रूपसे यह बात गलत साबित हो चुकी है। कुछका यह भी विश्वास है कि ईसाइयोंके धर्म–ग्रंथ बाइबिलमें जिस कुष्ठ रोगका वर्णन मिलता है, वह वस्तुतः उपदंश ही है।

वैज्ञानिकोंने अन्वेषण करके बताया है कि इस रोगका प्रधान कारण एक प्रकारका विशिष्ट कीटाणु, है जिसे अंग्रेजीमें स्पिरोकेटा पैलिडा (Spiro Cheta Pallida) कहते हैं। यह सहज ही रक्त शिराओंमें पहुँचकर रक्त प्रवाहको दूषित कर देता है। इस प्रकार इसका प्रवेश शरीरके रग-रगमें हो जाता है। यह कीटाणु बारीक धागेकी शक्लमें एवं घुमावदार होता है। इसका आक्रमण त्वचाके ऊपर अथवा श्लेष्मिक झिल्लीके स्तरमें घावके रूपमें होता है पर आम तौरसे यह रोग जननेंद्रिय जन्य संसर्गसे ही होता है। इस प्रकार प्रारम्भमें यह जननेंद्रियमें ही होता है।

उपदंश ग्रसित स्त्री अथवा पुरुषके चुंबनसे भी हो जाता है। अंगुली में भी हो सकता है और विशेषकर इसप्रकारका उन डाक्टरों एवं दाइयों को होता है, जो असावधानीसे हाथसे जननेंद्रियकी परीक्षा करते हैं।

साधारणतः इस रोग की तीन अवस्था होती है:–

प्रथमावस्थामें इस रोगका संक्रमण प्रत्यक्ष रूपमें होता है, जिसका वर्णन पहलेसे ही किया जा चुका है। इसमें स्त्री–पुरुषके जननेंद्रियमें घाव होने तथा संभोगके समय यह रोग, रोग ग्रस्त व्यक्तिके शरीरमें उपस्थित रोगाणुके समावेशसे होता है।

दूसरी अवस्थामें इस रोगका संक्रमण एक माध्यमके रूपमें होता है। इस अवस्थामें किसी बाहरी वस्तु, किसी रोगीके गिलाससे पानी पीने, एवं साबुन तौलिया इस्तेमाल करनेसे भी हो जाता है।

तीसरी अवस्थामें पैतृक होता है। इस रोगका आक्रमण शरीरके किसी भी अवयवपर हो सकता है। एक ही साथ शरीरके कई भागोंमें हो सकता है।

लक्षण– इसका प्रथम लक्षण क्षतके रूपमें प्रकट होता है। प्रारम्भमें इसका रूप स्थानीय होता है किंतु यह अबस्था दो महीनेया इससे कुछ अधिक समय तक बनी रहे तो इसके अन्य शारीरिक लक्षण भी प्रकट होते हैं।

यह पुरुषके शिश्नपर उसके ठीक नीचे एवं नारीके योनिपर होता है। साधारणतः एक क्षत किंतु कभी-कभी अधिक भी पाये जाते हैं। प्रारंभ में १०–१४ दिन तक इसका विशिष्ट रूप प्रकट नहीं होता और मामूली ही जान पड़ता है।

आरम्भमें इसका रंग लाल किंतु बादमें ताँबेके रंगका होता है। इस क्षतके साथ-साथ पीड़ित स्थानकी निकतटम लसीका ग्रंथियोंमें कुछ प्रदाह अथवा दर्द भी होता है। यदि क्षतके साथ ये लक्षण नहीं दिखाई देते तो उसे उपदंशका क्षत न समझकर साधारण ही समझना चाहिये।

बाघी–यह एक सामान्य लक्षण है। क्षतसे निकट लसीका ग्रंथियोंमें बहुत शीघ्र ही होती है। यह स्वभावतः गुप्तेन्द्रियके निकट दोनों पट्ठोंमें होती है। इस तरहकी वाघीमें पीड़ा नहीं होती पर स्पर्श करनेमें सख्त एवं सचल होता है। ओंठ या जीभके क्षतमें जबड़ेके दोनों कानोंके नीचेकी ग्रंथियाँ प्रभावित होती है। गलेकी क्षतमें गर्दनकी ग्रंथियां और हाथ अथवा बांहके क्षतमें कांखकी ग्रंथियां प्रभावित होती हैं!

दूसरी अवस्था–में उपदंशके शरीर गठन संबंधी लक्षण प्रकट होते हैं। यह लक्षण क्षत होनेके समयसे और तीन महीनेके बीच प्रकट होते हैं। रोग की दूसरी अवस्थामें खाल अथवा त्वचा और श्लेष्मिक ग्रंथियोंसे संबंधित अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। जैसे छाले पड़ना एवं घाव होना इत्यादि।

लसीकावाही ग्रंथियां या तो सूज जाती हैं या सूजनेकी संभावना

रहती है, कुछमें रोगकी प्रारंभिक अवस्थामें कुछ हरारत भी हो जाया करती है अथवा बराबर बनी रहती है। इसके अलावा शरीरमें कमजोरी, वजन घटना, जोड़ों, हड्डियों, एवं सिरमें दर्दका होना, एवं मानसिक बेचैनी तथा दुर्बलता आदि अनेक लक्षण होते हैं।

शरीरका रंग गंदलापन लिये हुये तांबेके रंगका हो जाता है। श्लैष्मिक झिल्लियोंपर प्रभाव डालनेवाले घाव या फोड़ा होना या चकत्ते पड़ना जो मुंह, गला, ओंठ, गलफर, जीभ, टांसिल, तालु, घांटी (कौवा), एवं कण्ठ-नलीके ऊर्ध्वभागको प्रभावित करता है।

मुंह, कंठ नलीकी ग्रंथियों या झिल्लियोंके क्षतके सबसे उग्र लक्षण उन लोगोंमें होते हैं जो तंबाकू अथवा किसी भी नशीली वस्तुके आदी हैं। बाल भी कमजोर पड़ जाते हैं एवं गिरने लगते हैं और कभी-कभी भौंहें भी झड़ जाती हैं।

तीसरी अवस्था–आरम्भमें रोगको निर्मूल न करनेपर यह अवस्था उत्पन्न होती है। इसमें रोगका प्रभाव प्राण धारक अंगों, स्नायुविक रज्जुओं, पेशियों, अस्थियों, शिराओं, मस्तिष्क एवं मेरुदण्ड आदिपर पड़ता है। इसमें समूचे शरीरपर आघात करता है।

जब इसका प्रभाव किसी प्राण धारक अंग-हृदय, फेफड़ा, गुर्दा, यकृत, प्लीहा, आमाशय एवं आंत आदिपर पड़ता है तो उस अवस्थामें रोगीकी मृत्यु हो जानेतक की संभावना रहती है! हड्डियोंमें सबसे पहिले नाक एवं चेहरेकी हड्डियोंपर प्रभाव पड़ता है एवं यह हड्डियां धीरे-धीरे गल-कर कोढ़का रूप धारण कर लेती हैं और फिर तो वहांसे सारे शरीरमें फैल जाता है और दर्द तो मज्जातक पहुँच जाता है।

बाल एवं नाखूनपर भी प्रभाव पड़ता है। रूखे एवं खुरदरे पड़ जाते हैं। आँख एवं कानपर पड़नेपर अंधा एवं बधिरता एवं मस्तिष्कपर पड़नेपर जीर्ण तथा अत्यन्त भयानक सिर दर्द। रोगके तथाकथित रोग निवारण होनेके कई साल बाद पक्षाघात हो जाता है। उपदंश उन्मादका भी कारण हो जाता है पर यह भयानक लक्षण उसी समय होता है जब रोग दबानेके लिए विषैली दवाओं आदि का भी प्रयोग किया जाता है।

पैतृक उपदंशमें माता–पिता की गलतीका दंड संतानको भी भोगना पड़ता है। यह रोग तीसरी पीढ़ीपर भी अपना प्रभाव डालता है या नहीं, इस पर मतभेद है किंतु इस विषयके कई अधिकारियोंका कहना है कि इसका प्रभाव तीसरी पीढ़ीतक नहीं पहुँचता, यद्यपि इसमें कोई संदेह नहीं कि स्वास्थ्यकी खराबी कई पीढ़ीतक रहती है।

यदि रोग ग्रसित पिताकी संतानको यह रोग होता है तो उसे "वीर्याणुजन्य उपदंश" कहते हैं। इसी प्रकार माताके विषसे भी भ्रूण बच नहीं सकता। इन दोनों दशाओंमें गर्भपात हो जानेकी अधिक संभावना रहती है पर अधिक दिन बीत जानेपर यह सम्भावना कम हो जाती है। प्रायः देखा जाता है कि कई गर्भपातके बाद यदि बच्चा हुआ भी तो कुछ ही दिनों बाद उसकी मृत्यु हो जाती है।

कभी–कभी तो ऐसी स्त्रीका बच्चा पेटमें ही मर जाता है। कभी–कभी बच्चे देखनेमें पूर्ण स्वस्थ दिखाई देते हैं पर कुछ ही दिनों बाद उपदंश अपना प्रभाव फिर दिखाने लगता है। उपदंशका जहर प्रायः युवावस्थामें ही दिखाई देता है। पैतृक उपदंश बच्चेके शरीरके किसी अंगमें विकृत रूपमें प्रकट होता है।

हड्डियों, आंख, दांत, नाड़ी जाल तथा मस्तिष्कपर भी प्रभाव पड़ता है और उनकी संतान प्रायः मंद बुद्धि एवं आलसी होती है।

पैतृक उपदंशमें सबसे प्रारंभिक लक्षण बच्चेका मुंहसे सांस लेना, नाककी श्लैष्मिक झिल्लियां उत्तेजित होकर छींक आना अथवा नाक बहने के रूपमें प्रकट होना। इस रोगका निदान केवल इन्हीं लक्षणोंपर निर्भर नहीं है बल्कि इसके साथ ही त्वचा यानी खालका नीला पड़ जाना, शरीर में मांसपेशियोंका क्षय होना, बच्चेका शरीर रूखा एवं मुर्झाया हुआ रहना, बच्चेको प्रायः तरह–तरहका चर्म रोग होना, उत्पादक अंग, श्रवण शक्ति, घ्राण शक्ति एवं अन्य अवयवोंपर कुप्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता।

चिकित्सा–छोटा उपवास, तीन सप्ताह फलाहार, फिर छोटा उपवास २१ दिन फल, दूध। इसी क्रमको उस समयतक दुहराते रहें जबतक रोग चला न जाय।

सारे शरीरकी साप्ताहिक मिट्टी स्नान १ घंटे तक।

साप्ताहिक वाष्प स्नान।

एक सप्ताहतक हर दूसरे रोज सारे शरीरकी गीली चादर लपेट। दूसरे सप्ताहमें दो रोज एवं बादमें साप्ताहिक।

साप्ताहिक हरी पत्ती स्नान।

पूर्व वर्णित तीनों रोगोंमें नीली दवा पीनी एवं घावपर हरा पानी या तेल लगाना चाहिये। रोज दो-तीन लीटर पानी पीना चाहिये।

पुरुषत्वका ह्रास–इस शब्दसे ही पुरुषार्थका अभाव मालूम होता है। इसमें जननेंद्रियकी क्रिया शक्ति क्षीण हो जाती है तथा उसमें सिहरन एवं उत्तेजनाका ह्रास हो जानेसे संभोग क्रियामें असमर्थता होती है एवं जीवन निराशामय हो जाता है।

लोग प्रायः पुरुषत्वके अभावमें दुखी एवं चिंतातुर दिखाई देते हैं पर यदि वह ठण्डे दिलसे सोचें तो इसका एकमात्र कारण अप्राकृतिक एवं असंयमित जीवन विताना ही है। इस अवस्थाको प्राप्त होनेके दो मुख्य कारण हैं:–

१–जननेन्द्रियपर अप्रत्यक्ष रूपसे प्रभाव डालनेवाला।

२–जननेंद्रियपर सीधा प्रभाव डालनेवाला, अर्थात, दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि जननेन्द्रियका दुरुपयोग तथा उसे उत्तेजित करनेके लिये नशीली चीजें, मद्य, अफीम, अलकोहल, तम्बाकू, तथा अनेक औषधियोंका प्रयोग करके भी ऐसा होता है, जैसाकि ब्रोमाइनके बारेमें डा० लिंडलारने यह लिखा है–

"They lessen the sensitiveness of the nerves and their conductivity are also powerful depresants on the organs, often causing the loss of sex-power."

यह स्नायुके चेतना शक्ति एवं उनकी गतिको कम कर देती है एवं हृदय तथा जननेंद्रियके शक्तिको भी और इससे अक्सर नपुंसकता भी हो जाती है।

इसी प्रकार तम्बाकू एवं काफीके बारेमें भी बताया जा चुका है कि इसके सेवनसे पुरुषत्वमें कमी आ जाती है।

उपरोक्त कथनसे स्पष्ट है कि तम्बाकू एवं काफी भी पुरुषत्वका महान दुश्मन है। अनेकों यह प्रश्न कर सकते हैं कि लाखों खाते-पीते हैं तो क्यासभी पुरुषत्व ह्रास के शिकार हैं? इसका उत्तर यही हो सकता है, कि इसका प्रभाव तुरन्त ही नहीं बल्कि बहुत दिनोंतक इस्तेमाल करते रहनेसे जीवनी शक्ति के अनुसार ही होता है पर यह मैं दावेके साथ कह सकता हूँ कि न इस्तेमाल करने वालोंकी अपेक्षाकृत उनमें निश्चय ही पुरुषत्व का अभाव होता है।

जो खाद्य एवं औषधि काम वासनाको अधिक उत्तेजित करती है, उनसे वह जोश-खरोश उतरनेके बाद ही जोरोंकी थकान आती है और कभी-कभी तो मूर्छा भी आ जाती है। ऐसी अनेक दवायें हैं जिनका तम्बाकू की तरह ही पुरुषत्वपर घातक प्रभाव पड़ता है। इनमें ब्रोमाइड, पोटेसियम आयोडिन, पोटेसियमनाइट्रेट, कैंफर, आरसेनिक एवं ब्लाडोना आदि। इस प्रकारकी औषधियां वीर्य दोषसे उत्पन्न रोगके लिये प्रायः इस्तेमालकी जाती हैं।

यों तो जननेंद्रियका सारे शरीरसे सम्बन्ध है पर मस्तिष्कसे बहुत निकटका अतः चिंतातुर रहनेसे उसका सीधा प्रभाव जननेंद्रियपर भी पड़े विना नहीं रह सकता और फलस्वरूप संतानके लिये तरसना पड़ता है।

हस्तमैथुनसे तो पुरुषत्वका ह्रास होता ही है पर साथ ही स्वाभाविक अति मैथुन तथा अन्य प्रकारके अप्राकृतिक मैथुनसे भी आना अनिवार्य है। जननेंद्रियके अनेक रोग जैसे गरमी, सूजाक, स्वप्नदोष एवं वीर्यपात आदिसे भी संतानोत्पत्ति-शक्ति नष्ट होनेके साथ ही पुरुषत्वका भी ह्रास होता दिखाई देता है।

मूत्र प्रणालीमें घाव होनेसे जब अंड अथवा उसके साथके अवयव रोग ग्रसित हो जाते हैं और सूजन या प्रदाह होता है, अष्ठीला ग्रंथि (प्रोस्टेटग्रंथि) प्रदाहित होती है तो पुरुषत्व का ह्रास होना स्वाभाविक है।

लोग मद्यसारको जननेंद्रिय उत्तेजक पेय समझकर महान भूल करते हैं। वास्तवमें यह बहुत ही विनाशक एवं पुरुषत्वहीनताको लाने वाला है क्योंकि अनेकों मद्यपीको ऐसा होते हुये देखा गया है। इस नशेका

सीधा प्रभाव स्नायुमण्डलपर पड़ता है अतः पुरुषत्व भी क्रमशः समाप्त होने लगता है।

चिंतासे भी इंद्रिय दुर्बलता आती है और उनको तो और भी शीघ्र आती है, जो अपने किये हुये कर्मोंपर सदा पश्चाताप तो करते ही हैं पर उसे दूर करनेका प्रयत्न नहीं करते।

इसके अलावा मनुष्य कभी-कभी गलत समझ बैठता है कि उसमें पुरुषत्वका अभाव है पर उसकी परीक्षा करनेपर मालूम होता है कि यह निराधार है। जैसा कि एक युवकके जननेन्द्रियकी परीक्षा करनेपर ज्ञात हुआ कि उस युवकके मनमें यह चीज घर कर गई थी कि उसके जननेन्द्रियमें गाँठ पड़ गई हैं और वह संभोग क्रियामें अपनेको असमर्थ पाता है। संभोगके पहिले ही वह सहम जाता था अतः उसी प्रकारकी प्रतिक्रिया भी होती थी।

एक दिन लेखकने स्वयं उसकी परीक्षा की तो पता चला कि वह ग्रंथि नहीं जीवनके लिये उपयोगी कूपर ग्रंथि है और फिर मैंने उसे पुस्तकमें लिखा हुआ पढ़ाकर इस भ्रमको दूर किया, तबसे वह कभी भी पुरुषत्व हीनताकी शिकायत नहीं करता।

आहार-चिकित्सा—७ दिन फलाहार, छोटा उपवास फिर ६ सप्ताह तक दुग्ध-कल्पपर रहनेके बाद पिछले अध्यायमें बताये सामान्य भोजनपर रहना चाहिये।

जल चिकित्सा–सप्ताहमें दो रोज गरम–ठंडा बैठक नहान।

रातको सोते समय जननेन्द्रियकी गीली पट्टी १ से ३ घंटेतक।

धूप चिकित्सा–नित्य जननेन्द्रियर लाल तेलकी मालिशकर उसपर २०–३० मिनटतक धूप लेना चाहिये।

सप्ताहमें २ रोज जननेन्द्रिय प्रदेशका हरी पत्तीका नहान।

यदि जाड़ा अथवा बरसात हो तो साप्ताहिक पूर्ण वाष्प नहान।

नपुंसकता–इस सभ्य जगतमें यह रोग बड़ी तेजीसे बढ़ रहा है और इसके रोगीकी बदौलत ही हजारों दवाओंवाले मालामाल हो रहे हैं, यद्यपि उन दवाओंसे क्षणिक उत्तेजनाके अतिरिक्त कुछ नहीं होता, फिर भी लोग

उस चक्करमें फंस ही जाते हैं, यद्यपि रोगीके पास स्वयं ही उसकी दवा होती है।

कारण–जव स्त्री या पुरुष अति संभोग करते हैं तो वहाँकी स्नायु शिथिल पड़ जाती है और उसमें संवेदन शक्ति एवं उत्तेजना कम होते-होते एक दिन वह विदा हो जाती है। दीर्घकाल तक शुक्रमेह एवं स्वप्नदोषके रहनेसे भी होता हैं। इसके अलावा गिरी हुई शारीरिक अवस्थाका भी इसमें हाथ होता है।

कभी–कभी हृदय, मस्तिष्क तथा यकृत आदिके दौर्बल्यसे अथवा आमाशय एवं वृक्कोंके दुर्बल होनेसे भी यह अवस्था हो जाती है। अनेक रोगों को दबानेके लिये दवाओंके इस्तेमालसे भी यह अवस्था आ जाती है, विशेषकर ब्रोमाइड, चरस, भांग, मद्य, सिगरेट, अफीम एवं तम्वाकू आदिके सेवनसे।

कभी–कभी मनोवैज्ञानिक कारण भी होता है कि यदि कोई अवसर ऐसा आ गया कि वह पहले स्खलित हो गया तो उसके मस्तिष्कमें यह बात घर कर लेती है कि वह संभोगके लायक नहीं है पर वास्तवमें यह कोरा भ्रम है क्योंकि कभी–कभी ऐसा हो जाना स्वाभाविक है।

वास्तविक नपुंसकता तो वह है जिसमें जननेन्द्रियमें बिल्कुल उत्तेजना ही न हो और रति क्रियाके अयोग्य हों और यदि किसी प्रकार इंद्रिय उत्ते–जित भी हुई तो बहुत ही हल्की और वह शीघ्र ही समाप्त हो जाती है। स्थायित्वका सदा अभाव रहता है। कभी–कभी मैथुनकी बिल्कुल इच्छा ही नहीं होती।

जिन कारणोंसे पुरुषत्वका ह्रास होता। है वे ही सब नपुंसकताके भी कारण हैं, जैसे अपरिपक्वास्थामें वीर्य नाश, निरंतर अति वीर्य नाश, किसी भी प्रकारका अति मैथुन, वाधित–मैथुन, अकारण जननेन्द्रिय उत्तेजना, मानसिक अपवित्रता, किसी भी प्रकारकी अप्राकृतिक आदत, मद्यपान, तम्बाकू, काफी पीना, दवाओंका प्रयोग, अति श्रम, चिंता, मानसिक एवं भावुक बोझ तथा वे सभी इस रोगके कारण हैं, जिनसे शरीर पतला नहीं दुर्बल होता है और कुछका तो केवल ब्रोमाइड ही कारण हो सकता है।

सभी आराम–तलब जिंदगी बितानेवाले अधिक या कम इस रोगके

शिकार होते हैं अतः इसका एवं मोटापाका भी गहरा सम्बन्ध है। नपुंसकता के साथ ही कभी-कभी अवरोध भी हो जाता है, जो प्रायः सूजाकके कारण होता है क्योंकि इसका प्रभाव अष्ठीला ग्रंथि, मूत्र प्रणाली एवं इससे संबंधित अन्य अवयवोंपर भी पड़ता है।

इसके अलावा मधुमेह, रक्ताभाव, चुल्लिका ग्रंथिके स्रावका अभाव, अथवा रीढ़के अन्य रोग, रीढ़ अथवा मस्तिष्कमें चोट पहुँचने अथवा उसमें किसी प्रकारकी ग्रंथि हो जानेसे भी हो जाता है। कभी-कभी तो छूतके रोग, मलेरिया, टाइफाइड, यक्ष्मा, खाँसी एवं अन्य रोगका प्रभाव भी जननेन्द्रिय पर पड़नेसे होता है।

असाध्य अवस्था–जब मनमें दूसरे लिंगसे संभोगकी कुछ इच्छा शेष हो तो आशाजनक समझें एवं जब इंद्रिय उत्तेजित होनेकी शक्ति थोड़ी देरके लिये नष्ट होती हो तो वह आसानीसे ठीक हो सकता है।

दूसरी प्रकारकी नपुंसकतामें मैथुन भूख (Sexual appetite) का अभाव एवं पुरुषोंको स्त्रियोंकी ओरसे एवं स्त्रियोंको पुरुषोंकी ओरसे अरुचि हो जाती है।

नपुंसकता होते हुए भी मैथुनकी इच्छा बढ़ी हो तो उसमें अष्ठीला ग्रंथिमें रक्तसंचय, कब्जके कारण प्रदाह, रीढ़की खराबी तथा अन्य शारीरिक दशाकी खराबीसे होता है।

मनोवैज्ञानिक नपुंसकता–यह मानसिक अवस्थापर निर्भर है एवं अस्थायी होता हैं। यह केवल विचार, स्नायुविक दौर्वल्य, उत्तेजना, भय, चिंता एवं रति रोग आदिके कारण होता है।

वास्तवमें मानसिक भावनाका विशेष प्रभाव पड़ता है। जैसे कोई व्यक्ति यदि विवाहके पहले बुरी आदतोंका शिकार हो गया है तो वह उससे होनेवाले परिणामोंके भयसे अपनेको विवाहके उपयुक्त नहीं समझता पर वास्तवमें वह नपुंसक नहीं रहता और विवाहके २–३ सप्ताह बाद ही वह अपनेको ठीक अनुभव करने लगता है।

बहुतसे ऐसे भी अनाड़ी मिलेंगे जो अपनेको नपुंसकताकी परीक्षाके लिये वेश्याके दरवाजेको खटखटाते हैं पर यह महान भूल है। इससे तो वे

परीक्षामें उत्तीर्ण–अनुत्तीर्ण होनेके वदले अन्य रतिरोगका शिकार होते हैं और कभी–कभी तो वास्तविक नपुंसकताके भी।

अनेक ऐसे भी पाये गये हैं कि जो अपनेको नपुंसक मान बैठते हैं पर विवाह होनेके वाद जव परस्पर आपरिचित स्त्री–पुरुषसे मिलते हैं तो उनके मनमें स्नेह, प्यार एवं परस्पर मिलनेकी भावना तीव्र होती है। उस मनोभावके तीव्र वेगमें नपुंसकता वह जाती है और वे अपने मनमें पूर्ण पुरुषत्व का अनुभव करते हैं पर जव स्त्री–पुरुषका स्वभाव प्रतिकूल होता है एवं परस्पर स्नेह एवं प्यारका अभाव होता है तो एक दूसरेसे सहमे रहनेके कारण उनके भाव विकसित न होनेके कारण नपुंसकता अपने–आप हो जाती है।

चिकित्सा–यों तो अनेक औषधियोंका अविष्कार हुआ है और विजली के इलाजका भी पर इन सवसे क्षणिक लाभ ही होता है किन्तु प्राकृतिक चिकित्सा अपनानेसे पूर्ण रूपसे स्थायी लाभ होता है।

जवतक पूर्ण रूपसे ठीक न हो जाय ब्रह्मचर्य व्रत–तन, मन, का पालन करना अनिवार्य है।

भोजन–छोटा उपवास करनेके वाद चिकित्सा प्रारम्भ करें और दो सप्ताह फल-दूध फिर निम्न आहार क्रम अपनायें:–

सुवह–कोई फल। दोपहर अंकुरित गेहूँके चोकर समेत आटेकी रोटी एवं हरी सवजी, उवली और कच्ची।

शाम–एक सप्ताह तक केवल ऋतुके फल, १० ग्राम अंकुरित गेहूँ और और वादमें $\frac{1}{4}$ ली०से शुरू करके $\frac{1}{2}$ ली० तक धारोष्ण दूध शामिल कर लें।

जल चिकित्सा–रोजाना जननेन्द्रियका गरम–ठंडा सेंक लेना चाहिए और सुविधा हो तो सप्ताहमें २ रोज गरम–ठंडा बैठक नहान। रातको सोते समय जननेन्द्रियकी गीली पट्टी।

यों तो सारे वदनपर धूप लें ही पर जननेंद्रियपर लाल तेलकी मालिश करके अवश्य ही १०-१५ मिनटका धूप लेना चाहिये।

शोक, चिंता आदिको फटकने नहीं देना चाहिये।

अंड ग्रन्थिके रोग

पुरुषके जननेंद्रियकी ये दो ग्रन्थियां हैं। इसके सम्बन्धमें पहिले बताया ही जा चुका है कि यह कहां होती है और कैसे विकसित होती है किन्तु दोषपूर्ण विकासकी वजहसे कभी-कभी बचपनमें ही हार्नियाका रोग हो जाता है अथवा जन्मसे ही अंडकोष सूज जाता है।

इसी प्रकार अण्डकोषके अनेक रोग हो जाते हैं। जिस थैलीमें अण्ड–ग्रन्थि रहती है, उस पर विभिन्न प्रकारके त्वचा रोग हो जाते हैं किन्तु विशेषकर अकौता एवं खाज जिसमें बहुत ही जलन होती है और पानीका स्राव होता है और उनमेंसे तो अनेकोंका ठीक होना बड़ा कठिन हो जाता है।

अण्डकोषमें पानी आना–सम्बन्धित अण्डकोष या अण्डधारक रज्जु (Spermatic Cord) में अंडकोषकी थैलीके प्रदाहके कारण तरल तत्व इकट्ठा हो जाता है। यह प्रायः मनुष्यके जीवनके मध्य भागमें, जबकि वह अपने जीवनकी कमाई वीर्यको नष्ट कर चुका होता है। धीरे – धीरे बढ़ने लगता है किन्तु पीड़ा नहीं होती है। यह हार्नियासे बहुत कुछ मिलता–जुलता है और कभी–कभी तो दोनों के पहिचानने में धोखा हो जाता है और विशेषकर उस समय जब सूजन उदर के गहवर (Cavity) से सम्बन्धित होता है।

अभी देहातोंमें भी प्रचलित है कि सूईसे सूराख करके पानी निकाल देते हैं और कभी–कभी गरम दवाओंकी पट्टी एवं प्लास्टर लगानेसे भी दूर हो जाता है पर इन साधनों द्वारा मूल कारण दूर न होनेसे पुनः वापस आने का भय सदा बना रहता है और गरम तथा विषैली औषधियोंका बादमें स्नायुविक संस्थानपर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।

चिकित्सा—२ दिनका छोटा उपवास, १ सप्ताह फलाहार फिर २ सप्ताह सामान्य भोजन। रोग मुक्त होने तक इसी क्रमको दुहरायें।

जल चिकित्सा-सप्ताहमें दो रोज गरम-ठंडा बैठक नहान। यदि यह सम्भव न हो तो इसी प्रकार अंडकोषको गरम–ठंडे जलमें डुबोयें।

रातको सोते समय अंडकोषकी गीली पट्टी, रोजाना धूप एवं साप्ताहिक हरी पत्तीका नहान।

अण्डकोषकी सूजन–अण्डधारक रज्जुकी शिरा विशेषकर बाईं ओरको असाधारण रूपसे मोटी एवं फैल जाती है। अन्य भागोंकी शिराओंकी सूजन की तरह इसका भी वीर्य दोषके साथ ही अन्य कारण भी होता है।

लक्षण–अंडग्रंथिमें भारीपन मालूम होता है एवं कभी-कभी बड़ी तीव्र वेदना भी होती है। विशेषकर गरमीके दिनोंमें अथवा गरमी पाकर जब यह फैल जाती है और उस समय यह थैलीकी भांति स्पष्ट दिखाई देती है, यद्यपि मनुष्यके लेटते ही वह खाली दिखाई देती है।

कब्ज रहनेसे भी प्रायः यह हो जाता है। आंत एवं अंडका परस्पर सम्बन्ध होनेके कारण इसपर दबाव पड़ता है। यह तीव्र एवं जीर्ण दो भागों में बांटा जासकता है।

तीव्र–में वेदना आदि जोरोंसे होती है और उसके साथ प्रदाह भी होता है। कभी-कभी तो रोगी तड़पने लगता है और उसे क्षण भरके लिए भी चैन नहीं पड़ती।

जीर्ण–जब तीव्र अवस्थाको, प्राकृतिक नियमों द्वारा उसके कारणको दूर न कर दवाओंसे दबा दिया जाता है तो बार–बार दमन करनेपर तीव्र जीर्ण रूप धारण कर लेता है किन्तु यदि प्रारम्भमें ही चेत जायं तो सम्भवतः भविष्यमें यह नौबत न आये।

चिकित्सा–तीव्र अवस्थामे जब तक समाप्त न हो जाय गरम पानी या हरी सब्जीका सूप पीकर उपवास करना चाहिये।

जीर्ण अवस्थामें अंडकोषके सूजनकी चिकित्सा चलानी चाहिये।

अष्ठीला ग्रंथिका रोग–पुरुषके जीवनके विकासके साथ इस ग्रंथिका गहरा सम्बन्ध है। यह मध्य आयु एवं बुढ़ापेमें अधिक कष्टदायी होता है क्योंकि जवानीमें जब मनुष्य अपने वीर्यकी रक्षा नहीं कर पाता तो इसपर कुप्रभाव पड़ता है और उसी कमजोरीका प्रभाव बुढ़ापेमें भी होता है।

विशेषकर इसमें प्रदाह होता है और वह बढ़ जाता है। इन दोनों कष्टोंसे मूत्राशय एवं मूत्र-मार्गकी क्रियामें रुकावट होती है। अवरोध एवं जलन कभी–कभी इतनी बढ़ जाती है कि बैठनेपर बहुत जोरकी पीड़ा एवं बेचैनी होती है और सुस्ती आ जाती और मूत्राशय खाली करना दुश्वार हो

जाता है और बहुतोंमें तो मूत्राशयमें महीनोंका पुराना पेशाब भरा रहताहै। पेशावकी मात्रा वहुत कम होती है और पेशाबकी इच्छा बनी रहती है। जंघा एवं गुदा प्रदेशके बीच असुविधाका अनुभव होता है और ग्रंथि बढ़ जाने पर गुदापर दवाव पड़ता रहता है।

कारण—यों तो कम आयुमें यह बढ़ता नहीं पर इस समय भी कब्जके कारण बढ़ सकता है। प्रारम्भिक जीवनमें अधिक सम्भोग करना ही इस तकलीफका प्रधान कारण है और विशेषकर हस्तमैथुन पर अनेकोंमें घोड़े एवं सायकिल आदिकी सवारीसे भी वहां रक्त संचय हो जानेके कारण हो सकता है। चिंता एवं अधिक कार्य भी इस रोगको प्रोत्साहन देता है।

किसी भी प्रकारसे होनेवाले वीर्य नाशसे बचना ही इस रोगसे बचने एवं मुक्ति पानेका प्रधान साधन है। जीर्णावस्थामें तो कमोवेश गंदला पेशाव होता है और पेशाव होनेमें अति पीड़ा होती है। गुदामें यदि अंगुली डालकर देखा जाय तो वह ग्रन्थि बड़ी हुई मालूम होती है एवं इसके कारण गुदामें खुजलाहट भी होती है।

चिकित्सा—एलोपैथीमें इसकी शल्य चिकित्सा करते हैं किंतु यह बड़ा ही भयानक आपरेशन होता है। जहां तक सम्भव हो इससे बचना चाहिये। प्रथम तो शल्य क्रिया लक्षणको दूर करता है पर वास्तविक कारणको नहीं और ग्रन्थिको निकालनेसे मनोभाव, मस्तिष्क एवं शरीर विशेषकर जननेंद्रियपर बुरा प्रभाव पड़ता है।

प्राकृतिक चिकित्सा ही इसकी वास्तविक चिकित्सा है कि जिसके द्वारा विना कोई अंग–भंग किये हम स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं और यदि रोग बहुत बढ़ा हुआ है तो भले ही पूर्ण स्वस्थ न हो सकें फिर भी बहुत हद तक इस चिकित्सा द्वारा ठीक रहा जा सकता है। मालिश एवं कुछ यौगिक क्रियाओं के अतिरिक्त भोजनका भी महत्वपूर्ण स्थान है। यदि रोगी योग्य चिकित्सक की देख-रेखमें चिकित्सालय में चिकित्सा कराने में असमर्थ है तो उसे इस प्रकार चिकित्सा क्रम चलानी चाहिये—

भोजन—दो सप्ताह तक फलाहार करनेके बाद छोटा उपवास। और फिर १० दिन फल या सब्जीका रसाहार। इस क्रमको रोगमुक्त होनेतक दोहराना चाहिए।

जल चिकित्सा- सप्ताहमें दो रोज गरम ठंडा बैठक नहान। रातको १२५ मिली० ठंडे पानीका एनीमा लेकर रोकना चाहिये, साप्ताहिक वाष्प नहान लेना चाहिये एवं जब कभी कब्ज हो २५० मिली. ताजे पानी का एनीमा लेना चाहिये। रोग मुक्त होनेपर भी भी साप्ताहिक उपवास अनिवार्य है।

वीर्यपात–अनेकों युवक इस रोगके शिकार पाये जाते हैं। जब वीर्य नष्ट होते–होते एकदम पतला हो जाता है तो यों ही अनजानमें वीर्यपात हो जाता है और कभी–कभी दिनमें भी विशेषकर गर्मीके दिनोंमें।

जब मल–मूत्र भरा रहता है तो उनके दवावसे भी वीर्य स्खलित हो जाता है, पर इससे घबड़ाना नहीं चाहिये। इसपर आसानीसे विजय प्राप्त किया जा सकता है।

कारण–प्राथमिक कारण तो अप्राकृतिक जीवन द्वारा पैदा हुई कामोत्तेजना है पर १० में ९ का कारण हस्त मैथुन ही है।

विवाहके बाद जब मनुष्य अति मैथुनमें फँस जाता है तो अपने आप बिना प्रयासके वीर्यपात शुरू हो जाता है और यों भी हस्तमैथुन बन्दकर देनेपर भी यह शुरू हो जाता है पर इससे भयभीत न हों। यदि आपने यह कुटेव त्याग दिया है तो ज्यों-ज्यों वीर्यमें गाढ़ापन एवं शक्ति आती जायेगी। यह अपने आप बन्द हो जायेगा।

लक्षण-सोते समय तो नहीं पर जब मनुष्य उठता है तो कपड़े पर दाग लगा हुआ मिलता है, उसमें दुर्गन्ध और साथ ही गंदे पानीकी तरह होता है।

चिकित्सा-शुक्रमेहकी चिकित्सा देखें।

कामुक उत्तेजना–दुर्बलताकी निशानी है। जरा भी कोई बात हुई कि मनुष्य उत्तेजनाका शिकार होकर परेशान हो जाता है। उस समय मालूम होता है कि उसके शरीरमें कितनी गरमी भरी पड़ी है और अन्त में कभी-कभी स्खलन भी हो जाता है।

कारण–मानसिक परेशानी विलासितायुक्त विचार, उत्तेजक कहा-नियाँ, सिनेमा एवं थियेटर आदि इसका कारण है पर यदि हस्तमैथुन अथवा अति मैथुनसे बच जायं तो इससे आसानीसे बच सकते हैं।

नियमानुसार स्वस्थ व्यक्तिको रातमें शृंगारयुक्त स्वप्न एवं शारीरिक

सिहरनके साथ वीर्यपात होता है और वह जाग भी उठता है और यदि दिनमें विना सिरहन, विना अनुभूति एवं बिना इच्छाके होता है और नींद भी नहीं टूटती तो समझना चाहिये कि जननेन्द्रिय बहुत कमजोर हो गई है और जिनका शुक्र-मार्ग एकदम कमजोर अथवा निकम्मा हो जाता है उनका बहिः वीर्यपात न होकर उल्टे मूत्राशयमें चला जाता है। ऐसे रोगियोंका सुबहका पेशाब गंदला होता है और उसमें वीर्य मिला रहता है।

उपचार-नपुंसकताकी चिकित्सा-

शुक्रमेह (Sperrmatorhaea)-में वीर्यपातकी बहुत ही गिरी अवस्था हो जाती है। यहाँ तक कि शृंगार रसकी कविता सुनने एवं स्वप्नावस्था अथवा यों ही किसी सुन्दर लड़के या लड़की उसके चित्रको देखते ही अनजाने ही वीर्यपात हो जाता है एवं विना किसी प्रकारकी उत्तेजना हुये ही अनैच्छिक रूपसे जाग्रतावस्थामें वीर्य स्खलित होता रहता है।

कब्जकी अवस्थामें अधिक जोर लगानेसे वीर्य निकल पड़ता है और उस समय यदि श्लेष्मा भी निकले तो अष्ठीला ग्रंथिको भी ग्रसित समझना चाहिए। इस रोगमें वीर्यमें श्लेष्माका भी आना अनिवार्य है पर कब्ज दूर होते ही इसमें सुधार होते दिखादे देता है।

कभी-कभी तो शामको अधिक श्रम अथवा किसी प्रकारका अति व्यायाम करनेसे उत्तेजना होती है तो रातको निश्चय ही वीर्यपात होता है अतः अधिक थकानसे भीवचना चाहिये।

अप्राकृतिक मैथुन एवं अति मैथुनके अलावा मलावरोध, आदि उत्तेजक खाद्य से वृक्क एवं वस्तिमें शोथ, भारी एवं उष्ण पदार्थका सेवन, चाय, मांस, अंडा मछली और मिर्च-मसालासे बचना चाहिये।

लक्षण- बृक्क एवं वस्तिगत शोथ या मलावरोधके कारण होने या मल त्यागके समय इसके कुछ बूंद निकल जाना। भारी उष्ण पदार्थ सेवनमें प्रायः स्खलन हो जाता है। हस्त एवं अति मैथुन से रोगी आलसी हो जाता है।

चिकित्सा- जहां तक संभव हो सादा एवं सात्विक भोजन करना चाहिए। २ दिन उपवास करनेके बाद एक सप्ताह फलाहारपर रहकर फिर २ दिन उपवास करके फल दूधके आहार पर १$\frac{1}{2}$ मास तक रहना चाहिये।

रोजाना प्रातः सायं १०–१० मिली. अंकुरित गेहूँका रस १० ग्राम शहद के साथ अवश्य लें।

जल चिकित्सा– सुवह १०-१५ मिनट तकका मेहन नहान एवं शाम को ५ मिनट तकका कटि नहान। सप्ताहमें २ रोज गरम ठंडा वैठक नहान एवं रोजाना अंडकोप एवं जननेंद्रियको ४ मिनट गरम एवं एक मिनट ठंडे पानीमें डुवोयें।

आसन–नित्य सर्पासन, शलभासन, धनुरासम, सर्वांगासन, हलासन, मत्स्यासन एवं शवासन करना चाहिये।

पुरुषका बंध्यापन-लोगोंकी यह आम धारणा है कि नपुंसकता एवं वंध्यापन एक ही रोग है पर यह कोरा भ्रम है। दोनोंमें गहरा अंतर है क्योंकि नपुं–सक हुये बिना भी वंध्यापन आ सकता है। शुक्रस्राव एवं शुक्रकीट, जिनके कारण गर्भ स्थिति होता है का अभाव होने पर भी वह नपुंसक नहीं हो सकता।

जव पुरुषके अंदर शुक्रकीट, जिनके कारण गर्भ स्थित होता है नहीं रह जाते है और यदि होते भी हैं तो उनकी गर्भ प्रदान करनेकी क्षमता नष्ट हो जाती है, तव वंध्यापन होता है।

कारण– जननेंद्रियके अधिक दुरुपयोग विशेषकर हस्तमैथुनके कारण होता है। शरीरमें क्षार एवं अम्लका अनुपात ठीक होनेपर पुरुत्व प्राप्त होता है पर अम्लता वढ़ जानेसे विपरीत अवस्था हो जाती है क्योंकि इस समय वीर्यमें उष्णता बढ़ जाती है जबकि वीर्यका गुण शीतल है।

सूजाकके कारण भी होता है। यदि किसी सूजाकीके बच्चा हुआ भी तो वह मरा हुआ अथवा कुछ ही दिनके बाद मरनेवाला या अंग विहीन होता है। इसी प्रकार उपदंशी की भी अवस्था हो सकती है।

गलसूआको दवाओं द्वारा दवानेसे भी अंडकोषपर प्रभाव पड़नेसे शुक्रकीट नष्ट हो जाते हैं अतः इसका अप्रत्यक्ष प्रभाव वंध्यापन ही होता है। इस रोगसे पीड़ित बच्चेके स्वस्थ हो जानेपर भी जब उसकी शादी होती है तो प्रायः यही देखनेमें आता है कि उसके कोई संतान नहीं हुई। इसी प्रकार मीयादी ज्वर (टाइफाइड) एवं अन्य छूतके रोगोंका भी प्रभाव होता

है अतः इन रोगोंके होनेपर कभी भी उसे दवाओंसे न दबाकर प्राकृतिक साधनों द्वारा ठीक होने देना चाहिये ताकि भविष्यमें उसका बुरा प्रभाव न पड़े।

रेंटजन–(**Rentgen**) या एक्सरेसे भी कुछ कालके लिये वंध्यापन हो सकता है क्योंकि शुक्रकीटाणुपर उसका घातक प्रभाव पड़ता है एवं रेडि–यम रेजके लिए भी ऐसा भी कहा जाता है।

हस्तमैथुनसे वंध्यापन उस समयतक नहीं होता जबतक अंडग्रंथि शक्तिहीन न हो जाय। इस रोगमें शुक्रकीटाणु वीर्य प्रवाहमें होते तो जरूर हैं पर वे इतने कम एवं हीन जीवनशक्तिवाले होते हैं कि उनसे गर्भ ठहरना असंभव है अथवा शुक्रकीटाणुका ही एकदम लोप हो सकता है। टांसिल कटानेसे भी ऐसा होता है।

चिकित्सा–संयमित एवं प्राकृतिक जीवन अनिवार्य हैं।

भोजन–छोटा उपवास, १ सप्ताह फलाहार एवं दो सप्ताह फल-दूध और बादमें सामान्य भोजन। भोजनमें पर्याप्त मात्रामें विटामिन ई० होना चाहिये। इसके लिए अपक्व अंकुरित गेहूँ एवं अन्य अन्नकण, फल एवं सब्जी सर्वोत्तम है।

जलचिकित्सा–एक सप्ताह तक लगातार गरम–ठंडा बैठक नहान लेना चाहिये फिर सप्ताहमें तीन बार, फिर सप्ताहमें दो बार लेना चाहिये।

रातको सोते समय पेड़ूपर मिट्टीकी पट्टी।

साप्ताहिक हरी पत्ती एवं वाष्प नहान तथा पूरे शरीरकी गीली चादर। जननेन्द्रियपर रोजाना प्रातःकालिक धूप।

नंगे पैर कुछ देर चलना चाहिये। कमसे कम १ सालतक ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करना चाहिये।

नारी बंध्यापन–परिवारमें भारस्वरूप समझी जाती हैं, पति तथा परिवारका सुख, प्यार एवं सम्मान उन्हें नहीं प्राप्त होता।

सामान्यतः लोग इसे भाग्य भरोसे छोड़ कर चुप हो जाते हैं, कुछ झाड़–फूंककर भरोसा करती हैं पर इन सबसे उस समय तक किसी प्रकार सहायता नहीं मिल सकती जबतक कि उसके कारणको दूर न किया जाय।

प्रायः स्त्रियोंको ही इस रोगका दोषी ठहराया जाता है पर पुरुष भी दोषी होता है। स्त्रियोंमें दो प्रकारका वंध्यत्व होता है:–

१–जन्मजात में जन्मसे ही कोई अंग, स्तान, भग अथवा गर्भाशय आदि जिनका जनन क्रियासे संबंध है, नहीं होता और यदि हुआ भी तो युवावस्था में स्तन विकास नहीं होता है, किसी-किसी स्त्रीमें तो योनि अथवा गर्भाशय भी नहीं पाया जाता। आंगिक विकृति की चिकित्सा असंभव है।

२–डिबाशय, योनि अथवा योनिके मुखपर झिल्ली विद्यमान होती है। इस अवस्थामें यौवनके कुछ चिन्ह मिलते हैं, केवल रजोधर्म नहीं होता। इस अवस्थामें भगनालीका मुंह आलपीनकी भांति पतला हो जाता अथवा योनि मुखकी झिल्ली बंद किये रहती है एवं कभी-कभी योनिके दोनों किनारे आपसमें मिले रहते हैं।

इसकी चिकित्सा तो शल्य चिकित्सा ही है पर शल्य चिकित्साके पहिले प्राकृतिक-चिकित्सा अवश्य ही आजमानी चाहिये। उपरोक्त के अतिरिक्त वंध्यापन के अनेक प्रकार हैं पर मुख्यतः यह दो हैं:–

१–जिसमें स्त्रीकोगर्भधारण अथवा प्रसवका सौभाग्य ही न हो।

२–एक बच्चा होनेके बाद फिर गर्भ धारण न हो।

स्त्री गर्भ धारण तो करती है पर पूर्ण नहीं होता बल्कि बीचमें ही गर्भ स्राव अथवा गर्भपात हो जाता है। स्त्रीके डिंबकोषमें ही गड़बड़ी हो जाती है।

कारण-शुक्राणुका न होना या गर्भाशयतक पहुँचनेमें असमर्थता शुक्राणुओंका बीच ही में नष्ट होना, गर्भाशय तक पहुँचनेमें रुकावट होना जैसे गर्भाशय द्वार या गर्भाशय ग्रीवाका अवरुद्ध होना।

भोजनमें विटामिन विशेषकर ई० एवं प्रोटीन आदिका अभाव भ इसका कारण है।

चुल्लिका ग्रंथि (Thyroid) तथा श्लेष्मिक झिल्लियोंकी अवस्थ शरीरके समस्त रासायनिक परिवर्तन एवं श्लेष्मिक झिल्लियां अपना प्रभाव गर्भाशयपर डालती हैं।

चिकित्सा–पुरुषके वंध्यापनमें बताई हुई चिकित्सा करनी चाहिये।

स्वप्नदोष–इस सभ्य जगतका प्रधान रोग है। शायद ही हजारोंमें दो-चार मिलें कि जिन्हें इसकी शिकायत न हो। युवकोंको तो छोड़ दीजिये बड़े बड़ोंको भी यह रोग होता है। इस रोगमें शुक्रके बाहुल्य, शुक्रोत्पादक अंगोंके स्पर्श सहिष्णुता या कभी–कभी दौर्वल्यके कारण निद्रावस्थामें स्वप्न सहित या कभी–कभी बिना स्वप्नके वीर्यपात हो जाता है।

कारण–हस्तमैथुन अथवा अति मैथुनके अतिरिक्त गलत आहार-विहार द्वारा जब रक्त दूषित होता है तो उनका विचारोंपर भी प्रभाव पड़ता है और दिन भर उसी वातावरणमें रहनेके कारण जब वह रातको सोता है तो यह विचार अचेतन मनमें पहुँचकर स्वप्नावस्थामें उत्तेजना पैदा करते हैं। यह तो है ही पर उस रक्तको दूषित करनेमें प्रधान हाथ कब्जका भी होता है। इसके अलावा अश्लील विचार, अविवाहित रहना, चित्त लेटना, मला–वरोध, अजीर्ण अधिक भोजन, या उदर कृमि इसके प्रधान कारण हैं।

सोते समय आंत साफ एवं मूत्राशय साफ न रहनेसे उत्तेजना होकर यह स्थिति पैदा हो जाती है।

लक्षण–रातको अच्छी नींद नहीं आती और वह व्यक्ति स्वप्नमें दिन के वातावरणका प्रतिविम्ब देखता है और स्त्रियोंके साथ रमण करता हुआ उसी प्रकार वीर्य स्खलित होता है जिस प्रकार स्वाभाविक मैथुनमें और सुबह उठते ही थकान-ह्रासकी अनुभूति होती है और जब यह अधिक बढ़ जाती है तो अन्य रोगोंके साथ ही अग्निमांद्य भी हो जाता है।

चिकित्सा–एक सप्ताह फलाहार, छोटा उपवास, ३ सप्ताह फल-दूध फिर सामान्य भोजनपर।

जलचिकित्सा–सप्ताहमें २ रोज गरम-ठंडा बैठक नहान।

मिट्टी चिकित्सा–रातको सोते समय उदरपर मिट्टीकी पट्टी। प्रातः नंगे पैर मिट्टीपर टहलना। प्रातः १०–१५ मिनटकी मेहनत एवं शामको ७–१० मिनट का कटि नहान लेना चाहिये।

सूर्यकिरण चिकित्सा–रीढ़ एवं हृदयपर आसमानी तेलकी मालिश।

जननेंद्रियके अग्रभागका क्षय–हस्तमैथुन अथवा अन्य प्रकारके अति मैथुन द्वारा जननेंद्रिय एवं अंड ग्रन्थि सिकुड़कर छोटे एवं खिच जाते हैं और मश्किलसे दिखाई देते हैं। कभी–कभी दूसरी ओर बहुत ढीले हो जाते हैं।

यों तो उत्तेजित हो जानेपर जननेंद्रिय बढ़ जाती है पर बहुत ही लुचलुची, ऐंठी हुई एवं एक ओरको टेढ़ी एवं अंडग्रन्थि तथा अंडकोष नीचेको लटक जाते हैं और रतिके समय जब उसमें पर्याप्त तनाव होना चाहिये तो वह सिकुड़ जाता है एवं प्रवेश नहीं कर पाता।

चिकित्सा–१ सप्ताह फलाहार, छोटा उपवास फिर दूध कल्प करनी चाहिये।

जल चिकित्सा–साप्ताहिक वाष्प नहान। सप्ताहमें तीन बार गरम-ठंडा बैठक नहान, जननेंद्रियका गरम-ठंडा सेंक करके गीली पट्टी बांधनी चाहिये। प्रातः १०-१५ मिनटका मेहन नहान, प्रातः धूपमें जननेंद्रियपर नित्य लाल तेलकी मालिशकर २०-२५ मिनट का धूप लेना चाहिये।

शिश्नमुण्ड प्रदाह-साधारण गंदगी एवं मैथुन संबंधी रोगके छूतके कारण भी शिश्नमुण्ड एवं उसके अग्रभागके त्वचामें प्रदाह होने लगता है।

लक्षण-प्रभावित अवयवपर पहिले खुजली शुरू होती है फिर वहां सूजन एवं लाली आती हैं और असावधानी बर्तने पर वहां मवाद भी आ सकता है। अधिक समयतक इस रोगके रहनेसे बार-बार उसे स्पर्श करनेके कारण हस्तमैथुनकी आदत भी पड़ सकती है अत: इसका लक्षण शुरू होतेही सावधानी बर्तनी चाहिये।

चिकित्सा–सबसे पहिले शीतल जलसे प्रदाहित स्थानको नित्य धोना चाहिये और उसपर दिनमें २–३ बार मिट्टी रखना चाहिये।

भोजन–एक सप्ताह फलाहार, छोटा उपवास एवं २ सप्ताह फल–दूधपर और यदि संभव हो तो दूध न लेकर केवल फल लें।

जल चिकित्सा–जननेंद्रिय पर गीली पट्टी बांधनी चाहिये।

साप्ताहिक वाष्प नहान लेना चाहिये।

जननेंद्रियपर नित्य नीमकी पत्ती रखकर १५–२० मिनटकी धूप लेनी चाहिए और हरा तेल लगाना चाहिए। साप्ताहिक पत्ती नहान लेना चाहिए।

जननेन्द्रियके अग्र भागका व्रण–जननेंद्रियके अग्र भागपर व्रण हो जाता है। इससे गंदा एवं संक्रामक स्राव होता है और दूसरी जगह लग जानेपर वहां भी व्रण होनेका भय रहता है। यह छूतवाले रोगीके सम्पर्कमें रहनेसे

प्रायः बढ़ता है।

यह बड़ी द्रुतगतिसे कभी-कभी २४ घंटेके अन्दर पर सामान्यतः एक सप्ताहके अन्दर बढ़ता है।

चिकित्सा–शिश्नमुण्ड प्रदाहमें बताई चिकित्सा।

अण्डकोषमें प्रदाह एवं सूजन–यह प्रायः सूजाककी तीव्रावस्थामें होता है। हालत खराब हो जानेपर फूटकर बहने लगता है और कभी–कभी भगं–दर भी होजाता है। सूजाककी भांति चिकित्सा करें।

जननेंद्रिय स्नायुदौर्बल्य–(Sexual neuresthenia) जननेंद्रिय (Sexual) दुर्बलता बढ़नेसे स्नायविक दौर्बल्य हो जाना स्वाभाविक है। जीवन शक्तिका ह्रास, रक्त संचारमें मंदता एवं अशुद्ध रक्तका प्रभाव जिस प्रकार अन्य संस्थान पड़ता है उसी प्रकार जननेंद्रियपर भी।

लक्षण–वीर्यपातसे शुरू होकर नपुंसकताकी सीमा तक हम पहुँचते हैं और फलस्वरूप स्मरण शक्तिकी दुर्बलता, दिमागी उड़ान एवं कार्य करनेकी क्षमता घट जाती है तथा रीढ़ एवं विशेषकर निचले भागके चारों ओर दर्द होने लगता है। पुराना मंदाग्नि भी इस रोगका कारण है। कब्ज तो होता ही है और कभी-कभी संग्रहणी भी। सांस तेज चलती है हाथ पैर ठंडे होते हैं आँखें, कमजोर, आंखों के सामने भुनगे उड़ना, एवं नाकमें सुरसुराहट (Sensation) आदि इस रोग में हो जाते हैं।

चिकित्सा–१० दिन फलाहार, छोटा उपवास, तीन सप्ताह फल-दूध, इस क्रमको उस समयतक दुहरायें जबतक रोग चला न जाये।

जल चिकित्सा–दोनों समय १५–२० मिनटका मेहन नहान लेना चाहिये।

दिनमें दो-तीन बार ५–६ मिनटका शवासन करना चाहिये।

नंगे पैर सुबह रेत, मिट्टी अथवा दूबपर टहलना चाहिये।

रीढ़पर नीले तेलकी मालिश करके २०-३० मिनट नित्य धूप लेनी चाहिये।

जिरियान (Gleet)–में मूत्र प्रणालीसे श्लेष्मा आती है। तीव्रा–वस्थाको दवाओं द्वारा दबा देनेपर यह प्रायः सूजाककी उपस्थितिमें होता है।

इसे जीर्ण सूजाक भी कहा जाता है।

लक्षण--इसका स्राव पतला रंग रहित होता है किन्तु कभी-कभी कमोवेश दुर्गन्धयुक्त एवं गाढ़ा होता है।

चिकित्सा--सूजाककी चिकित्साकी भांति करना चाहिये।

जननेंद्रियका छोटा होना--जननेंद्रियका दुरुपयोग करनेपर वहांकी विकास शक्ति क्षीण हो जाती है और रक्त संचारके मंद पड़ जानेसे वह छोटा होता चला जाता है।

चिकित्सा--नपुंसकताकी चिकित्सा करनी चाहिये।

प्रदर--वर्तमान युगमें नारी समाजके लिये यह एक अभिशाप है। इस घातक रोगमें फंसनेपर जीवन संकटमय हो जाता है। यह बहुमुखी नागकी भाँति है। सामान्यतः माता एवं युवतियोंको होता है पर यदि पिताको अथवा माताको सूजाक रहा है तो कम आयुकी लड़कियोंको भी हो सकता है।

कारण--विरुद्ध एवं विपरीत भोजन, विना भूखके भोजन करना, अजीर्ण, गर्भपात, अत्याधिक संभोग, अधिक सवारी करना, चितामें डूबे रहना आलसमें पड़े रहना एवं शारीरिक श्रमसे भागते रहना भी कारण होता है।

आधुनिक चिकित्सा पद्धतिके अनुसार इसके दो कारण माने जाते हैं:—

जननेंद्रियात्मक--यह उस स्थानसे सम्बन्धित होता है जों बच्चेदानी से सम्बन्धित हैं।

२. अन्य कारण--जिनका सम्बन्ध जननेंद्रियसे नहीं बल्कि अन्य अवयवसे होता है।

जननेंद्रियात्मक कारणका आधार निम्नांकित है।

अ--गर्भाशय, योनिनली एवं योनिमें प्रदाहका होना।

ब-गर्भाशयकी भीतरी दीवारकी झिल्लीमें परिवर्तन, गर्भाशय ग्रीवाकी लुआबी झिल्लीमें परिवर्तन या एक ही स्थानमें रक्तका अधिक संचय होना।

स--जनन संबंधी ग्रंथियोंसे अधिक स्राव होना एवं गिल्टियों अथवा अर्बुदों, जोकि गर्भाशयकी लुआबी झिल्लियोंपर या योनिनली अथवा योनिको प्रभावित करता है, का होना।

द--ऐसे अर्बुदोंका होना जो टूट रहे हों अथवा व्रण हो रहे हों। जब

वे टूटने लगते हैं तो स्राव मृत खालके रूपमें होने लगता है, जिसमें निष्प्राण झिल्लियां टूट-टूट कर निकलती हैं।

वहिर्जननेंद्रियात्मक कारण—इसका सम्बन्ध किसी अंग विशेषसे न होकर समस्त शरीरसे होता है, जैसे गलत आहार-विहारसे उत्पन्न रक्ताभाव, कब्ज, उदरका अर्वुद, जलोदर, एवं ववासीर आदि जन्य जननेंद्रियमें रक्तकी कमी हो। आयुर्वेद में इसके चार रूप बताये गये है :—

१—कफज—में कच्चे रस वाले सेमर आदिके गोंदकी तरह चिपचिपा साथ ही कुछ पीले रंगका एवं चावलके धोवन जैसा स्राव होता है।

२—पित्तज—में पीला, एवं नीला कुछ कालापन लिये हुए लाल तथा गरम रक्त, एवं दाह सहित स्राव होता है।

३—वातज-रूखा कालिमा लियेहुये, लाल फेन सहित एवं मांसके धोवन के रंगका थोड़ा-थोड़ा स्राव एवं साथ ही सुई चुभोने जैसी पीड़ा होती है।

४—सन्निपातज—शहद, घी एवं हरतालके समान रंगवाला, मज्जाके समान एवं मुर्देकी सी गंधवाला स्राव होता है।

इस प्रदरके कारण उत्पन्न हुई अवस्थामें अधिक रक्त स्राव होनेपर दुर्वलता, थकावट, वेहोशी, अधिक प्यास, जलन, प्रलाप, शरीरमें पीलापन तन्द्रा, आक्षेपक एवं अपतन्त्रक आदि उपद्रव होते हैं।

जिसमें निरन्तर स्राव हो, अधिक प्यास, जलन एवं ज्वर हो एवं शरीरका रक्त अधिक पतला पड़ गया हो वह असाध्य है।

सामान्यतः योनिनली अथवा योनिसे साधारण स्राव होना स्वाभाविक है पर यह होता है बहुत कम मात्रामें और वह भी ४ प्रकारका।

१—ग्रंथियोंसे रुक-रुककर होनेवाला पतला श्लेष्मिक स्राव जो गर्भाशय नलीको तर वनाये रखता है।

२—गाढ़ा श्लैष्मिक स्राव, अंडेकी सफेदी जैसी, जो गर्भाशयके ग्रीवासे निकलता है।

३—गर्भाशयके स्तरोंपर पाया जानेवाला सफेद परतका स्रवित पदार्थ।

४—गर्भाशयसे होनेवाला एक प्रकारका स्राव जो क्षारमय होता है।

पर स्मरण रहे श्वेत प्रदरमें साधारणसे कहीं अधिक स्राव होता है

और वह भी ४ प्रकारका।

१—गर्भाशय ग्रीवासे सफेद रंगकी जमी हुई श्लेष्माके रूपमें स्राव जब गर्भाशयकी नली या योनिसे होता है तो गाढ़ा पीलापन लिये हुये दूधके रंग का होता है। यह प्रायः अधिक मात्रामें अधिक जलन एवं पीड़ाके साथ होता है एवं विशेषकर रक्ताभाववाली स्त्रियोंमें पर जिस स्त्री को जितना ही कब्ज होगा उतना ही भयानक होगा। योनिके अर्बुदसे भी यह रोग हो सकता है।

२—पीव एवं श्लेष्मा मिला हुआ होता है। यदि केवल पीव ही निकले तो बच्चेदानीके भीतर तीव्र प्रदाहका लक्षण समझना चाहिए पर श्लेष्मायुक्त हो तो जीर्ण प्रदाहका लक्षण है। बच्चेदानी या उसकी नलीमें प्रदाह होनेके कारण प्रायः सांसर्गिक या प्रसव सम्बन्धी संक्रामक रोग होता है।

३—पानीकी तरह लाल वर्णका स्राव। ऐसा स्राव गर्भाशयसे रोगके शुरूके कुछ महीनोंका हो सकता है पर यह उतना घातक नहीं होता जितना कि मांस धोवन ऐसा स्राव। इसमें कभी गर्भाशयमें फोड़ा भी हो सकता है।

४— स्राव अधिक बदबूदार होता है। यह कृत्रिम साधनों द्वारा संतति निग्रहकी देन है। गर्भाशयकी नलीमें स्पंज या पेसारी एक अर्सेतक पड़े रहनेपर योनि नलीकी दीवार जख्मी हो जाती हैं, अर्बुदके टूटने या नष्ट होने, गर्भपात, चाहे वह कृत्रिम साधनों द्वारा अथवा अपने आप हो पर कृत्रिमका फल भयानक होता है, कृमि एवं गंडमाला आदिसे भी होता है किंतु प्राकृतिक चिकित्सामें सबका कारण गलत आहार-विहार द्वारा पैदा हुई कमजोरी एवं उस अंग विशेषपर अधिक विजातीय द्रव्यका संचय होना है।

अनुचित रहन-सहन, कब्जका बना रहना, मानसिक अथवा शारीरिक या दोनों प्रकारका आघात, शोक, भय एवं चितासे भी होता है। इसके अलावा अजीर्ण, गंडमाला एवं कफ प्रधान स्त्रियोंको अधिक होता है। अधिक मिर्च मसालेके सेवन, तीव्र एवं जहरीली दवाओंके प्रयोग, अधिक संभोग, गर्भ निरोधमें कृत्रिम साधनोंके प्रयोग एवं अनियमित ऋतु स्राव आदि अनेक कारण होते हैं।

लक्षण—सामान्यतः मासिक धर्मके कुछ दिन पहिले एवं बादमें अधिक स्राव होता है। अधिक स्राव होनेपर उदर अथवा पेडू में भार प्रतीत होता

है, सिरमें चक्कर, बदन टूटना, पैरमें दर्द, मिचली एवं कै आदि होना अनेक लक्षण हैं।

शारीरिक एवं मानसिक शक्तिका ह्रास, मुखाकृतिका फीका पड़ जाना, मुर्दनीका छाया रहना, चेहरेपर कुछ सूजन, आंखोंके नीचे कालिमा, घरका साधारण कार्य करनेमें अशक्यता एवं अधिक खराब होनेपर वदवूदार स्राव होने लगता है।

चिकित्सा–१ सप्ताह फलाहार, छोटा उपवास, २ सप्ताह फल-दूध और जबतक रोग चला न जाय इसी क्रमको दुहरायें फिर साधारण भोजन पर आ जायें।

मिट्टी चिकित्सा– नित्य आधा घन्टाके लिए पेड़ूपर मिट्टीकी पट्टी।

जल चिकित्सा- सप्ताहमें दो रोज गरम ठंडा बैठक नहान।

रोजाना योनिका एनीमा। रातको योनिमें गीले कपड़ेकी पट्टी रखकर ऊपरसे कपड़ा और उसके ऊपर ऊनी कपड़ा लगा लेना चाहिये।

नित्य २५० मिली. ताजे पानीका एनीमा, नित्य प्रातः १५-२० मिनटका मेहन नहान।

नीम-पत्ती या गूलरके छालको पानीमें खौला एवं ठंडाकर उसका रोजाना डूस देना।

कच्चा एवं पक्का गूलरा पीपल, बरगद एवं आंवला फल हितकारी है। चौलाई, पालक, किशमिशका विशेष प्रयोग करना चाहिये।

हिस्टीरिया–गलत आहार-बिहारसे पैदा हुई मानसिक एवं स्नायुविक दुर्वलताका रोग है। इसका दौरा भयानक होता है एवं प्रधान लक्षण तो यह है कि इसमें रोगिणी मामूली सी मामूली बातपर हंसने एवं रोने लगती है।

इसके अनेक रूप होते हैं। कुछ बहनें तो रोग ग्रसित होकर महीनों चारपाईपर पड़ी रहती हैं, अनाप–शनाप बकती हैं एवं कभी–कभी आत्म हत्याकी भी सोच बैठती हैं।

जब यह अवस्था जीर्ण हो जाती है तो अन्य रोग अपेंडिसाइटिश, आमाशायिक व्रण एवं रीढ़की हड्डियों आदिका रोग हो जाता है। कभी कभी शरीर अकड़ने लगता है पर मासिक धर्मकी गड़बड़ी ही इसका प्रधान

कारण है। शरीरमें पीड़ा, सिर फटना, जी मिचलाना, पेट फूलना, हृदय धड़कन, कै (उल्टी) एवं हाथ पैर सुन्न होना आदि होता है।

यह प्रायः १२ से २५-३० वर्षकी आयु तक होता है। गलत आहार-विहार द्वारा उत्पन्न कामवासनाको जब जवान अविवाहित एवं विधवा शांत नहीं कर पाती तो यह होता है। वंध्या स्त्रीके शरीरमें अधिक गर्मी रहनेके के कारण स्नायु मंडल उत्तेजित होनेके कारण हो जाता है पर बूढ़ी स्त्रियों को नहीं होता, पर इससे बचनेके लिए विधवा एवं अविवाहितके लिए सात्विक आहार-विहारकी व्यवस्थाकी गई है।

गरीबोंकी अपेक्षा अमीरों, गांवकी अपेक्षा शहरी लड़कियोंमें यह रोग अधिक होता है। बड़े लाड़--प्यार एवं सुख-चैनसे पली तथा विलास प्रिय लड़कियां, विशेषकर इस रोगका शिकार होती हैं। वासनामें लिप्त रहनेवाली विधवा, पति वियोग, सास-ननदसे भय त्रस्त एवं स्वभावसे आलसी तथा कोमल स्वभाववाली स्त्रियां भी इस रोगका शिकार होती है।

हिस्ट्रियामें रोगिणी पूरी तौरसे अचेत नहीं होती है। वह दूसरोंकी सुनती तो है पर स्वयं उत्तर नहीं दे सकती. । दौरेमें जो दशा होती है उसका उसे ज्ञान रहता है। मुखका रंग लाल एवं आंखें बंद रहती हैं।। बार-बार पलक मारती एवं कभी-कभी दांत पीसती है। जबान नही कटती। मुखके अलावा सारे शरीरपर नकली ऐंठन होती है। दौरा समाप्त होनेपर नींद नहीं आती, साहस कम हो जाती है और पेशाब अधिक आता है।

उपचार–एक सप्ताह फलाहार, ३ दिन उपवास, २ सप्ताह फल-दूध। इसी क्रमको उस समयतक दुहरायें जब तक रोग चला न जाये। अपक्वाहार का विशेष महत्व है।

नंगे पैर मिट्टी एवं ओसपर टहलना चाहिये।

इनके अतिरिक्त जिन विशेष कारणसे हुआ हो उसे दूर करना चाहिये।

किसी विशेषज्ञकी सहायतासे नाकसे पानी पीना सीखना चाहिये।

कब्ज रहनेपर ताजे पानीका एनीमा। नित्य प्रातः १०–१५ मिनट मेहन नहान।

हस्त मैथुन–से मुक्ति पानेके लिये दृढ़ निश्चय एवं ब्रह्मचारीका

आहार-विहार होता है। नाम जप उपयोगी है।

मासिक दोष–मासिक स्रावका ठीक २ होना स्त्रीके अंडाशय (Ovary) एवं पीयूषिका ग्रंथि (Pituarity gland) पर निर्भर है अतः जिन लड़कियोंकी यह ग्रंथि अस्वस्थ होती है, उनका ठीक समयपर नहीं होता। फलस्वरूप वह वेडौल एवं मोटी हो जाती हैं और लड़कोंकी भी यह ग्रंथि खराब होनेपर वे भी मोटे बेडौल एवं कभी-कभी उनमें पुरुषत्वका अभाव भी हो जाता है। मासिक स्रावके वाद एक प्रकारके स्राव द्वारा उन तंतुओं में पुनर्जीवन आता है।

नष्टार्त्तव- यह सामान्य अथवा स्थानीय कारणसे भी हो सकता है। प्रथममें तो साधारण दुर्बलता एवं रक्ताभावसे भी हो सकता है और साथ ही अन्य कारणसे भी । प्रथम तो जवान स्त्रियोंमें शायद ही होता है। असंतुलित भोजन, अति श्रम शुद्ध वायुके अभाव एवं अन्य कारणसे शरीर दब जाता है और मांस कम हो जाता है और क्रमशः मासिक स्राव घटते-घटते एकदम बन्द हो जाता हे।

इसी प्रकार गम्भीर रोग–हृदय रोग, क्षंय, मलेरिया, बढ़ी हुई मंदाग्नि आदि–से जब शरीर दुर्वल एवं रक्त हीन हो जाता है तो उनमें मासिक बंद हो जाता है। इन सभी प्रकारके कारणोंमें रक्ताभावका प्रमुख स्थान है। इसके अतिरिक्त मासिक कालमें ठंडक लगने, भय, चिंता एवं सदमासे भी यकायक बंद हो जाता है।

स्नानीय कारणोंमें गर्भाशय एवं डिंब ग्रंथियोंके उचित रीतिसे विकसित न होनेपर भी हो जाता है, यद्यपि समयपर मासिक होता है फिर भी रक्त गर्भाशयमें धीरे–धीरे इकट्ठा होकर उस मार्गको बंद कर देता है अथवा शुरूसे उसकी रचनामें कोई खराबी हो जाती है।

चिकित्सा– छोटा उपवास । फलाहारपर विशेषकर लोहा युक्त आहार और फिर २ सप्ताह फल दूध।

रोजाना मालिश कराना।

सप्ताहमें ३ रोज गरम ठंडा बैठक नहान।

प्रातः १०–१५ मिनटका मेहन नहान और शामको १० मिनटका पेड़ू नहान। रातको सोनेके पूर्व गर्भाशयका गरम ठंडा सेंक एवं पट्टी।

अत्यार्त्तव– (Menorrhea)–सामान्य स्वास्थ्य खराब होनेपर ही यह रोग होता है। विभिन्न नारियोंमें व्यक्तिगत विशेषताके आधारपर कम या अति स्राव होता है। शरीरसे अधिक रक्त निकल जानेपर अनेक रोग पैंदा होते हैं। जब हृदय रोग होता है तो गर्भाशयमें साधारणतः रक्त संचय होता है एवं फलस्वरूप मासिक स्राव बढ़ जाता है। कुछमें मासिकके प्रारम्भमें बहुत ही अधिक रक्त निकल जाता है पर जब बंद होनेको होता है तो अनियमित एवं अति स्राव हो जाता है किंतु अति स्रावमें प्रायः स्थानीय कारण अधिक होता है।

गर्भाशय च्युत होने, गर्भाशयमें प्रदाह, बच्चा होनेपर अथवा गर्भपात होनेपर, गर्भाशयमें अर्बुद, (Polypns) एवं रेशायुक्त मांस (Fibroid) होनेपर यह अवस्था अधिक होती है।

चिकित्सा—छोटा उपवास । ६ सप्ताह फलाहार फिर ३ सप्ताह फल–सब्जी एवं बादमें भी अपक्वाहार पर रहना चाहिये । भोजनमें किसी प्रकारका मिर्च मसाला एवं नमक न लें।

प्रातः १०–१५ मिनटका मेहन एवं मात्र १० मिनटका पेड़ू नहान पेड़ूपर रोजाना मिट्टीकी पट्टी। नीली बोतलका रोजाना पानी पीना और रोजाना सामान्य एवं साप्ताहिक पूर्ण हरी पत्ती नहान।

कष्टार्त्तव–– (Dysmenorrhea)– इसमें उदर–शूलकी भांति ही बेचैनी एवं घबराहट होती है। दुर्बलताके साथ ही मिचली एवं कै भी होता है, पीड़ा युक्त मासिक स्राव और एकदम बंद होनेका कारण कभी-कभी रक्ताभाव भी होता है। ठंडक तथा थकान विशेषकर स्रावके पहिले हो जाने से पीड़ा हो सकती है एवं डिंब ग्रंथिमें जलन होनेसे भी इस रोगमें कमर प्रदेशमें पीड़ा होती है एवं प्रायः हिस्टीरियाका दौरा भी हो जाता है। इस प्रकारकी पीड़ासे बचनेके लिये सदा आंत साफ रखते हुये नियमित व्यायाम और उचित आहार करना चाहिये।

कारण––गर्भाशय, डिंब वाही नलिका एवं आंतरिक अवयवमें प्रदाह

आदि होना इसका प्रधान कारण है और विशेषकर बच्चेके जन्मके बाद ऐसा होता है। यों तो कम-वेश पीड़ा सदा बनी रहती है पर मासिक कालमें बढ़ जाती है। यह तो स्थानीय चिकित्सासे भी ठीक हो जाती है।

कष्टार्त्तवके बहुतसे उलझन तो स्रावके साथ ही शुरू होते हैं। इनमेंसे कुछ तो गर्भाशयके गर्दनके चटक (Spasm) जानेसे अवरुद्धता उत्पन्न कर देते हैं फलस्वरूप बहुत ही तीव्र पीड़ा होती है। बहुतोंमें तो अंदरकी श्लेष्मिक झिल्लियाँ जब स्रावके समय नहीं निकल पातीं तो पीड़ा होती है और उसके बाहर निकल जानेपर पीड़ा शांत हो जाती है।

बहुतोंमें गर्भाशयका उचित विकास न होनेके कारण उसका मुंह संकुचित हो जाता है और स्राव होनेमें कष्टका अनुभव होता है।

चिकित्सा—नष्टार्त्तवकी चिकित्सा।

मासिक स्राव क्षय–में स्राव सदाके लिये बंद हो जाता है। यों तो इसके अनेक कारण हो सकते हैं पर मुख्यतः दो हैं :–

(१) स्वाभाविक एवं (२) रोग जन्य

अवस्थाके अनुसार ४२ से ५२ सालके अंदर बंद हो जाना स्वाभाविक है किंतु समयसे पहिले कम आयुमें बंद हो जाना निश्चय ही रोगकी निशानी है। शरीरके कमजोर होने, रक्ताभाव, एवं किसी भी रोगके कारण हो सकता है।

डिंब ग्रंथियोंके आपरेशन, गर्भाशय च्युत होने, डिंबाशय या योनि मार्गमें अर्बुद हो जाने आदिसे भी स्राव सदाके लिए बंद हो जाता है।

उपचार–रोग जन्यके लिए नष्टार्त्तवकी तरह चिकित्सा करनी चाहिये।

तपसा ब्रह्मचर्येण व्यस्यवेदं सनातनम्।
इतिहास मित्रं चक्रे पुण्यं सत्यवती सुतः॥ आदि १/५४

"जल चिकित्सा" "आहार और स्वास्थ्य" "उपवास और स्वास्थ्य" ये तीनों किताबें बहुत उपयोगी जान पड़ी, मैं आशा करता हूँ कि जनता इन पुस्तकोंका समुचित उपयोग करेगी।

स्व० आचार्य श्रीमन्नारायण भारतीय राजदूत, नैपाल

मैंने आपके भेजे हुए सभी प्रकाशनोंको देखा। इन उपयोगी कृतियोंके लिये आपको बधाई।

श्री शंकरसहाय सक्सेना भूतपूर्व शिक्षा संचालक, राजस्थान

आपकी पुस्तकें, जो मुझे कलकत्तामें दी गई थीं, मैंने सरसरी निगाहसे देखीं, सभी पुस्तकें अति उपयोगी हैं।

मोरार जी देसाई भू०पू०, प्रधान मन्त्री, भारत सरकार

डा० हीरालालने "जल चिकित्सा" की इन विभिन्न पद्धति का व्यवहारिक अनुभव अर्जित करके "जल चिकित्सा" पुस्तक प्रणयन किया है।

पं० कमलापति त्रिपाठी अध्यक्ष, अ.भा. कां.क., नई दिल्ली

You have written a beautiful book and it will establish you as a naturopath in our Country.

Let **Dr. Kulranjan Mukarjee,** Calcutta.

"मातृकला और शिशु पालन" लिखकर आपने प्राकृतिक चिकित्सा साहित्यके एक बहुत बड़े अभावकी पूर्तिकी है।

श्री धर्मचन्द सरावगी, संस्थापक महामंत्री
अ० भा० प्रा० चि० प०, कलकत्ता

मेरी रायमें "आहार और स्वास्थ्य" पुस्तक अच्छे ढंगसे लिखी गई है और लेखक ने इस ओर एक अच्छा कदम उठाया है।

डा० चन्द्रभान सिंह, भू. पू. प्रिंसिपल
गणेशशंकर विद्यार्थी मेमोरियल मेडिकल कालेज, कानपुर

आपकी एक अत्यन्त उपयोगी विषय "अपक्वाहार" पर ऐसी पुस्तक देखकर आनन्द हुआ।

स्व० कृष्णचन्द्र अग्रवाल, व्यवस्थापक
निसर्गोपचार आश्रम, उरुलीकांचन (पूना), महाराष्ट्र